ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत चमत्कार

एक पुरातन ऋषि का दिव्य जन्म

१४ सितम्बर सन् १९४२, में उत्तर-प्रदेश के गाजियाबाद जिले के, ग्राम खुर्रमपुर-सलेमाबाद में एक विशेष बालक का जन्म हुआ। बालक जन्म से ही एक विलक्षणता से युक्त था। और विलक्षणता यह कि जब भी यह बालक सीधा, श्वासन की मुद्रा में, कुछ अन्तराल लेट जाता या लिटा दिया जाता, तो उसकी गर्दन दायें-बायें हिलने लगती, कुछ मन्त्रोच्चारण होता और उसके उपरान्त विभिन्न ऋषि-मुनियों के चिन्तन और घटनाओं पर आधारित ४५ मिनट तक, एक दिव्य प्रवचन का प्रसारण होता। पर एक अपठित ग्रामीण बालक के मुख से ऐसे दिव्य प्रवचन सुनकर जन-मानस आश्चर्य करने लगा, बालक की ऐसी दिव्य अवस्था और प्रवचनों की गूढ़ता के विषय में कोई भी कुछ कहने की स्थिति में नहीं था। इस स्थिति का स्पष्टीकरण भी दिव्यात्मा के प्रवचनों से ही हुआ। कि यह आत्मा सृष्टि के आदिकाल से ही विभिन्न कालों में, शृङ्गी ऋषि की उपाधि से विभूषित और सतयुग के काल में आदि ब्रह्मा के शाप के कारण इस युग में जन्म लेने का कारण बनी। इस जन्म में अपठित रहने की स्थिति में जैसे ही यह शरीर श्वासन की मुद्रा में आता तो कुछ अन्तराल बाद इस दिव्यात्मा का पूर्व जन्मों का ज्ञान उद्बुद्ध हो जाता और अन्तरिक्ष में उपस्थित सूक्ष्म शरीरधारी दिव्यात्माओं के समक्ष एक सत्संग सदृश्य स्थिति बन जाती जिसमें इस महान आत्मा का सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं के लिए प्रवचन होता। जिसमें इस आत्मा के पूर्व जन्मों के शिष्य महर्षि लोमश मुनि पूज्य महानन्द के प्रवचन भी होते। क्योंकि इस दिव्यात्मा का स्थूल शरीर यहां मृत्यु लोक में स्थित होने के कारण वहां सत्संग में दिये जाने वाला दिव्य प्रवचन इस शरीर के माध्यम से यहाँ उपस्थित जन-मानस को भी सुनाई देते हैं। इन प्रवचनों में ईश्वरीय सृष्टि का अद्भुत रहस्य समाया हुआ है, जो किसी भी मनुष्य को, समाज और राष्ट्र को उच्च कोटि का जीवन जीने का कारण पैदा करने का सामर्थ्य रखते हैं। -शृङ्गी ऋषि वेद विज्ञान प्रतिष्ठान

१ प्रथम अध्याय माता वसुन्धरा के तीन रूप 28 04 1980

जीते रहो! देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भान्ति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्पराओं से ही उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद-वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा वर्णनीय माना गया है। जो उस परमपिता परमात्मा का वरण कर लेता है अथवा उसको वर लेता हे, वह उसी को प्राप्त हो जाता है।

आज का हमारा वेदमन्त्र माता वसुन्धरा की याचना कर रहा था। 'महाप्राण देवः वसुन्धरां ब्रह्मणे व्यापकम् देवाः' हे मां! तू वसुन्धरा है और कल्याण करने वाली है। हमारे वैदिक साहित्य में माता वसुन्धरा के नाना पर्यायवाची शब्दों में विवेचना होती रहती है। यहाँ माता वसुन्धरा परमपिता परमात्मा और 'प्रथियोममत्वाम् देवः' माता को भी हमारे यहाँ वसुन्धरा कहा जाता है। जितना भी यह प्राणीमात्र है, यह इन्द्र-वृत्त, इन्द्र-शास्त्र कहलाया गया है। जब हम माता के गर्भस्थल में होते हैं तो उस माता को वसुन्धरा कहते हैं, क्योंकि वसुन्धरा का अभिप्राय जिसके गर्भस्थल में हम वशीभूत हो रहे हैं अथवा जिससे हम अपने जीवन को महान् बनाते रहते हैं। उस माता का नाम वसुन्धरा कहलाया गया है।

माता के गर्भस्थल में निर्माण हो रहा है। निर्माणवेत्ता निर्माण कर रहा हैं नाना प्रकार की नस-नाड़ियों का निर्माण हो रहा है। कहीं बुद्धि का निर्माण हो रहा है। चार प्रकार की बुद्धियों का निर्माण प्रायः हमारे यहाँ परम्परागतों से ही माना गया है। परन्तु उस सर्वत्रता का निर्माण माता के गर्भस्थल में प्रायः होता रहता है। यह कैसा मेरा देव वरणीय है, कैसा विज्ञान स्वरूप माना गया है? जिस विज्ञान की तरंगों में प्रत्येक मानव परम्परागतों से ही अनुसन्धान करता रहा है और अनुसन्धान करता रहता है। परन्तु यह सब प्रतिक्रियाएं, अंकुरों का जो जन्म होता है वह माता के गर्भस्थल में होता है जिसे माता वसुन्धरा कहा जाता है। वसुन्धरा का अभिप्राय जिसके गर्भस्थल में हम सदैव वशीभूत रहते हैं।

जब माता के गर्भस्थल से पृथक् हो जाते हैं तो माता पृथ्वी के गर्भस्थल में आ जाते हैं। वह जो माता पृथ्वी हमें नाना प्रकार के खाद्य और खनिज पदार्थों को प्रदान करती रहती है। उसी के द्वारा हमारे जीवन का संचार होता रहता है। जितना भी विज्ञान है इस माता के गर्भस्थल में ओत-प्रोत है। पुरातन काल के वैज्ञानिकों ने यह विचारा कि वेद में वसुन्धरा का वर्णन आता है परन्तु उसके गर्भस्थल में यह संसार वशीभूत रहता है तो हमारे ऋषि-मुनियों ने समाधिष्ठ हो करके इस माता वसुन्धरा के गर्भ में प्रवेश किया और नाना प्रकार का जो खाद्य-खनिज पदार्थ इसके गर्भस्थल में विद्यमान है, उनको जानने का उन्होंने प्रयास किया।

मुझे स्मरण आता है महर्षि भारद्वाज, ब्रह्मचारी सुकेता और ब्रह्मचारी कवन्धि अपनी स्थली पर विद्यमान थे। वेद का अध्ययन चल रहा था और वसुन्धरा का वर्णन आया। ब्रह्मचारी कवन्धि ने ऋषि से कहा कि महाराज! यह वेद-मन्त्र क्या कह रहा है? महर्षि भारद्वाज मुनि जहाँ योग में पारंगत थे। वह विज्ञान में भी पारंगत थे। उन्होंने कहा कि 'ब्रह्मणाः वसुन्धराम् देवाः अस्तम् रुद्रकृति देवाः', यह जो वसुन्धरा है इस पृथ्वी के गर्भ में नाना प्रकार के जो खाद्य और खनिज पदार्थ हैं उसका प्रायः वर्णन वैदिक साहित्य में आता रहता है। इस माता के गर्भस्थल में कहीं स्वर्ग का निर्माण हो रहा है, कहीं रत्नों का निर्माण हो रहा है। नाना प्रकार की निर्माणवती यह वसुन्धरा कहलाती है। इसी के गर्भस्थल में यह मानव विद्यमान रहता है। इसी के गर्भस्थल में यह नाना प्रकार की आभाओं को प्राप्त करता रहता है।

तो मेरे प्यारे! जब वैज्ञानिकों ने भारद्वाज, सुकेता, कवन्धि आदि ऋषियों ने अपनी आभाओं में परिणत हो करके समाधिष्ठ हो गये और समाधिष्ठ हो करके जब वह अपनी शांत मुद्रा में विद्यमान हो करके इस माता वसुन्धरा के गर्भस्थल में उन्होंने प्रवेश किया, नाना प्रकार पके खाद्य-खनिजों को जान करके उन्होंने नाना प्रकार के वाहनों का निर्माण किया। तो देखो जहाँ मेधावी का वर्णन आता रहता है वहाँ मेधावी से इस माता पृथ्वी का समन्वय रहता है। तो इसीलिए प्रत्येक मानव को अपने में मेधावी बनना चाहिए क्योंकि मेधावी बनने से मानव के जीवन की नाना तरंगें पृथ्वी में समन्वित रहती हैं, वसुन्धरा की आभाओं में जो वर्णित रहती हैं उसे जानना बहुत अनिवार्य कहलाता है। महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने यह कहा कि मैं सदैव इस वसुन्धरा के गर्भ में नाना प्रकार की आभाओं को जानता रहता हूं परन्तु इस वसुन्धरा के रूपों में नाना प्रकार की 'अहिल्या कृतिभा स्वेतम् वर्णस्थे' अहिल्या रूप में भी परिणत रही है। यह वैदिक साहित्य में नाना प्रकार के पर्यायवाची शब्दों की विवेचना हमारे यहाँ परम्परागतों से ही ऋषि-मुनियों के मस्तिष्कों में प्रायः नृत्य करती रही है।

जहाँ हम माता वसुन्धरा इस पृथ्वी को कहते हैं वहाँ वसुन्धरा नाम उस चैतन्य देव प्रभु को कहा जाता है जिसके गर्भस्थल में यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड गति कर रहा है। सर्वत्र ब्रह्माण्ड नृत्य कर रहा है जो हमें दृष्टिपात आ रहा है। यह ब्रह्माण्ड नाना रूपों में परिणत होता रहता है। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब महर्षि भारद्वाज के आश्रम से ब्रह्मचारी कवन्धि एक समय महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के द्वार पर जा पहुंचे। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा, 'कहो कवन्धि! आज तुम्हारा आगमन कैसे हुआ?' उन्होंने कहा प्रभु! मैं इसलिए आ पहुंचा हूँ, मैं जानना चाहता हूँ वेद में माता वसुन्धरा का वर्णन आता है और यहाँ प्रभु चैतन्य देव को उस महान जो कण-कण में व्याप्त है उस देव को हमारे यहाँ वसुन्धरा कहा जाता है। मैं उसकी प्रतिभा को जानने के लिए आया हूँ। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ब्रह्मचारी कवन्धि के इन शब्दों का पान करने के पश्चात् शान्त मुद्रा में विद्यमान हो गये। जहाँ ब्रह्मचारी अध्ययन करते थे वहाँ विज्ञान में उनकी गति परायण रहती थी। उन्होंने कहा, हे ऋषि! हे बाल्य! हे ब्रह्मवेत्ता! मैं आज तुम्हें कुछ वर्णन करने के लिए उपस्थित हुआ हूँ और सभा में विद्यमान हो गये। तो पुत्रो! उनका विचार विनिमय होता रहा। विचार-विनिमय होते हुए उन्होंने कहा कि यह जो प्रभु का ब्रह्माण्ड है यह अनन्त विज्ञानमय माना गया है जितना यह ब्रह्माण्ड विज्ञान से समन्वित रहता है मानव के जीवन का सम्बन्ध भी इसी से होता रहता है।

ब्रह्माण्ड की एक सूत्रता

आज मैं जब यह विचारने लगता हूँ जितना भी यह ब्रह्माण्ड है, अन्तरिक्ष में नाना लोक-लोकान्तर गति कर रहे हैं, यह नाना आकाश गंगाएं तुम्हें दृष्टिपात आ रही हैं, यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड उस माता, चैतन्य देव के गर्भस्थल में विद्यमान रहता है। वह चैतन्य देव 'ब्रह्माण बह्मे आभ्यताम्' जो इस आभा में रमण करने वाला है। आज मैं विचारता रहता हूँ, एक आकाश-गंगा में नाना सूर्य हैं, नाना शनि हैं, नाना मंगल कहलाए जाते हैं। नाना सौर-मण्डलों की चर्चाएं होती रहती हैं। तो नाना पृथ्वियां सूर्य की परिक्रमा करती रहती हैं। आज जब यह विचार आता है, वेद का मन्त्र स्मरण आता है 'वसुन्धराम् देवाम् ब्रह्मणे व्यापकम् देवत्र कृतिभाः' मेरे प्यारे! वह जो चैतन्य देव हे वह कृतो है और वह स्मरणीय है और वह विज्ञान में रमण करने वाला है।

वह माता वसुन्धरा बन करके सर्वत्र ब्रह्माण्ड को अपने में धारण कर रही है, जैसे जननी माता के गर्भस्थल में अंग-प्रत्यंगों का निर्माण होता रहता है, इसी प्रकार मुनिवरो! नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों की जो माला है, जो इसको धारण कर लेता है वह प्रभु की आभा में रमण करता रहता है। आज जब मैं यह विचारता हूँ कि यह नाना प्रकार की जो आकाश गंगाएं हैं, एक आकाश-गंगा नहीं, नाना आकाश गंगाएं हैं और नाना निहारिकाएं हैं

जिन निहारिकाओं में प्रकाश होता रहता है, आदान-प्रदान होता रहता है। आज जब मेरे पुत्रो देखो! ब्रह्मचारी कवन्धि और महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज अपने आश्रम में विद्यमान हो करके आकाश-गंगा पर विचार विनिमय करने लगे। एक आकाश-गंगा शनि मण्डलों की परिक्रमा करने लगे। तो शनि-मण्डल की आभा उनमें प्रवेश हो गयी और प्रवेश हो करके एक आकाश-गंगा में एक अरब के लगभग एक शनि-मण्डलों की गणना की। जिस शनि-मण्डल को पाँच सूर्य प्रकाशित करते हैं, पाँच ऐसे-ऐसे जो हमें प्रकाश देते हैं, ऐसे-ऐसे नाना सूर्य शनि-मण्डल को प्रकाशित करते हैं। कैसा प्रभु का यह अमूल्य जगत् है। एक मण्डल दूसरे मण्डल को प्रकाशित करते हैं। कैसा प्रभु का यह अमूल्य जगत् है। एक मण्डल दूसरे मण्डल को प्रकाशित कर रहा है। एक मण्डल दूसरे मण्डल को सहकारिता में परिणत कर रहा है। इसीलिए हमारे यहाँ सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक सूत्र में पिरोया हुआ है।

आज जब हम इस सूत्र की विवेचना करने लगते हैं, जब हम यह विचारने लगते हैं एक सूत्र में नाना प्रकार के लोक-लोकान्तर पिरोए हुए हैं। एक मण्डल दूसरे मण्डल का सहायक बना हुआ है, जैसे एक प्राणी दूसरे प्राणी का सहायक बना हुआ है। इसी प्रकार सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक सूत्र में पिरोया हुआ है। वाह रे देव! तू कितना वैज्ञानिक है? तू कितना महान् है, तेरी महत्ता का जब मैं वर्णन करने लगता हूँ तो वाणी मौन हो जाती है, नेत्रों की दृष्टि विघटित हो जाती है। श्रोत्रों में श्रवण करने की शक्ति नहीं रहती। वह मेरा देव कितना वैज्ञानिक है, कितना महान् है, कितना विचित्र है कि एक सूत्र में सर्वत्र ब्रह्मण्ड पिरोया हुआ है।

ब्रह्माण्ड की विशालता

जब मुझे स्मरण आता है ब्रह्मचारी कवन्धि और महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज का विचार-विनिमय हो रहा हैं दोनों विचार-विनिमय कर रहे हैं। उन्होंने कहा, हे ब्रह्मचारी कवन्धि! यह आकाश-गंगा हैं। एक आकाश-गंगा में अरबों-खरबों शनि मण्डल कहलाते हैं। तो इसमें कितने सूर्य मण्डल होंगे, कितने सूर्य होंगे? सौर मण्डलों में रमण करने वाले। एक सौर-मण्डल का अधिपति सूर्य कहलाता है, द्वितीय सौर-मण्डल का अधिपति ध्रुव कहलाता है, तृतीय सौर-मण्डल का अधिपति सोमेश्वर कहलाया गया हैं यहाँ नाना प्रकार के सौर-मण्डल कहलाते हैं। नाना सौर-मण्डलों का समन्वय हो करके एक आकाश-गंगा का निर्माण होता है और नाना आकाश-गंगाओं का मिलान हो करके एक अवन्तिका बनती है और एक सहस्र अवन्तिकाओं का समन्वय हो करके एक कृतिभा बनती है।

परिणाम क्या? मेरे प्यारे! एक-दूसरे की आभा में रमण करने वाला यह जगत् है। नाना आकाश-गंगाओं में रमण करने वाले याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने ब्रह्मचारी कवन्धि से कहा, हे ब्रह्मचारी कवन्धि! मेरी जो यह विज्ञानशाला है इस विज्ञानशाला में आकाश-गंगा नहीं, नाना आकाश-गंगाएं दृष्टिपात आती हैं। तुम्हें प्रतीत है कि ऐसी-ऐसी एक आकाश-गंगा में निहारिकाएं हैं जिन निहारिकाओं का प्रकाश अरबों वर्षों में पृथ्वी मण्डल तक पहुंचता है। बहुत-सी निहारिकाएं इस प्रकार की हैं जिनके प्रकाश में सृष्टि का कल्प ही समाप्त हो जाता है। उसके पश्चात् भी इस पृथ्वी मण्डल पर नहीं पहुंचता।

विचार-विनिमय क्या? यह कैसा मेरे प्यारे प्रभु का विज्ञानमय जगत् है? जिसके ऊपर प्रत्येक मानव को विचार-विनिमय करना है। प्रत्येक मानव चिन्तन और मनन करने के लिए संसार में आया है। यह मेधावी जो पुरुष होते हैं वह इसके ऊपर सदैव मनन करते रहते हैं। आओ मेरे प्यारे! मैं क्या उच्चारण करने चला गया? मुनिवरो! संसार में तीन प्रकार की आभाएं हमारे यहाँ परम्परागतों से मानी जाती हैं। सबसे प्रथम वसुन्धरा का तीन स्वरूपों में वर्णन किया गया। वसुन्धरा नाम माता का है। जननी माता के गर्भस्थल में हमारा निर्माण होता है। द्वितीय वसुन्धरा पृथ्वी को कहा जाता है। इसी प्रकार तृतीय में वह चैतन्य देव है जिसके गर्भस्थल में सर्वज्ञ ब्रह्माण्ड है और उसी से आच्छादित हो रहा है। उसी के गर्भ में यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड ओत-प्रोत रहता है।

वेद मन्त्रों की आभा

तो मेरे प्यारे! विचार-विनिमय क्या? आज मैं यह वाक्य उच्चारण कर रहा हूँ कि प्रत्येक वेदमन्त्र में तीन प्रकार की आभाओं का वर्णन होता है। प्रत्येक वेदमन्त्र हमें तीन प्रकार की उड़ान उड़ा रहा है। सबसे प्रथम व्यवहार है। व्यवहार में मानव के जीवन में किस प्रकार सात्विकता आती है? व्यवहार कैसा हो? माता के प्रति। वसुन्धरा एक व्यवहार का शब्द रूप कहलाया जाता है। मेरे प्यारे! व्यवहार और उसके पश्चात् विज्ञान कहलाया गया है। प्रत्येक मानव को वैज्ञानिक बनना चाहिए, विज्ञान में रमण करना चाहिए। नाना प्रकार की आभाओं में रमण करने वाला मानव वैज्ञानिक कहलाता है। नाना प्रकार के अंग, महाअंग, प्रत्यंगों को जान करके मेरे पुत्रो! वह यन्त्रादियों का निर्माण करता है। नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण करता हुआ अपने जीवन को वह आध्यात्मिकवाद में प्रवेश कराता है। तृतीय आध्यात्मिक विज्ञान है। आध्यात्मिक विज्ञान क्या है? मैंने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था कि आध्यात्मिक विज्ञान वह कहलाता है जहाँ मानव मृत्यु से पार हो जाता है। प्रत्येक मानव मृत्यु को नहीं चाहता। मेरे प्यारे! मृत्यु से पार होने वाला कौन प्राणी है? वह जो आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता है, आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता मृत्यु से पार हो जाता है, मृत्यु को लांघ जाता है। जिस मानव ने संसार में आ करके मृत्यु से पार हो जाने का प्रयास नहीं किया है, वह मानव, मानव नही कहलाता।

भौतिकवाद से आध्यात्मिकवाद

इसीलिए मेरे पुत्रो! तुम्हें मृत्यु से पार होना है तो आध्यात्मिक विज्ञान में तुम्हें प्रवेश करना होगा। आध्यात्मिक विज्ञान क्या है? व्यवहार में कुशलता हो और भौतिक विज्ञान में उसकी गति हो और भौतिक विज्ञान समेट करके अपने अन्तर्हृदय में प्रवेश करता हुआ, आध्यात्मवाद में प्रवेश कर जाता है क्योंकि बिना भौतिक विज्ञान के आध्यात्मिक विज्ञान में कोई भी मानव प्रवेश नहीं कर पाता। आओ मेरे प्यारे! आज मैं एक भूमिका बनाने के लिए आया हूँ और वह भूमिका क्या है? मैं यह भूमिका तुम्हें वर्णन कराने आया हूँ। इससे पूर्व शब्दों में तुम्हें यह उच्चारण करना चाहूँगा क्योंकि वेद के मन्त्र आते रहते हैं कि मानव मृत्यु को आध्यात्मिक विज्ञान व भौतिक विज्ञान से पार हो करके आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करता रहता है। यह विचार मैं मुनिवरो! तुम्हें कल प्रकट करूंगा।

आज मैं यह उच्चारण कर रहा था हमारे यहाँ माता वसुन्धरा के नाना प्रकार के स्वरूप माने गये हैं सबसे प्रथम वसुन्धरा का अभिप्राय यह है कि हम जिसके गर्भ में वशीभूत रहते हैं उस माता का नाम वसुन्धरा कहलाता है। वह वसुन्धरा है क्योंकि उसी में रमण करते रहते हैं। मेरे पुत्रो! देखो चैतन्य देव जो संसार के कण-कण में व्याप्त है जिसकी आभा में यह संसार आभायित हो रहा है। जिसकी चेतना से यह संसार चेतनित हो रहा है। उसी की चेतना में जितना भी यह जड़ जगत् है उसमें दृष्टिपात् आ रहा है, उसी के सूत्र में यह ब्रह्माण्ड पिरोया हुआ है। चाहे वह चेतन्यवत के समान दृष्टिपात आने वाला हो, चाहे सर्वत्र रूपों में दृष्टिपात आने वाला हो, किसी भी रूप में रमण करने वाला यह ब्रह्माण्ड इसी एक सूत्र में पिरोया हुआ है।

उस सूत्र को जानना हमारे लिए बहुत अनिवार्य है। वह सूत्र क्या है जो लोक-लोकान्तरों में रमण कर रहा है। वह एक माला बन रही है। वैज्ञानिक उस माला को अपने में धारण कर लेता है। वह जो माला है उसी माला को धारण करने के पश्चात् देखो सूत्रामाणम् की कल्पना करता है। क्या एक ही सूत्र में कल्पना करता रहता है? संलग्न होता रहता है? नाना लोक-लोकान्तर उस एक सूत्र में ऐसे पिरोये हुए हैं, एक-एक परमाणु पिरोया हुआ है। अग्नि की नाना तरंगें उसी में पिरोई हुई हैं जैसे अग्नि का निर्माण होता है, जैसे द्यौ-लोक में, आभा में रमण करने वाला अभ्यस्त होता रहता है उसी प्रकार एक सूत्र की कल्पना की जाती है।

आज हम इसलिए विचार-विनिमय करने के लिए आये हैं कि हमारे जीवन का जो सूत्र है उस सूत्र को हमें

जानना चाहिए। जिस सूत्र से नाना प्रकार के परमाणु एक सूत्र में पिरोए हुए हैं और वह मानव के रूप में परिणत हो रहे हैं उसी से मानव कहलाता है, दार्शनिक कहलाता है, वह वृहद् रूप कहलाता है। तो हमें उस सूत्र को जानना है। आज मैं विशेष चर्चाएं प्रकट करने के लिए नहीं आया हूँ। आज मैं तुम्हें भूमिका बनाने के लिए आया हूँ और वह अपने विचारों की भूमिका क्या है? कल मैं उच्चारण करूंगा कि भौतिकवाद से आध्यात्मिकवाद में कैसे प्रवेश करना है। एक योगेश्वर अपनी समाधि में प्रवेश करता है वह कैसे समाधिस्थ होता है? वह किन-किन आभाओं को ले करके, समाधिस्थ हो करके संसार को भौतिकवाद से आध्यात्मिकवाद में परिवर्तित कर देता है।

मेरे प्यारे! मुझे समय मिलेगा, जब वेद का मन्त्र आएगा मैं उसकी विवेचना करूंगा। आज का हमारा यह वाक्य क्या कह रहा है? मैं माता वसुन्धरा की याचना कर रहा था। वह माता वसुन्धरा जो हमारा कल्याण करने वाली है, जो हमारे जीवन में सदैव महत्ता प्रदान करने वाली है उसके ही सूत्र में सर्वत्र प्राणी-मात्र पिरोया हुआ है, यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड उसी में पिरोया हुआ है। हे मां! तेरे ही गर्भस्थल में हम अपने जीवन को पनपाते रहते हैं और तेरे को ही प्राप्त होना चाहते हैं। तू अपनी लोरियों को हमें पान करा, जिससे हे माता! हम संसार-सांगर से पार हो जाये। इस संसार में मान और अपमान रूपी नाना प्रकार की तरंगे हमें प्रभावित करती रहती हैं, हमें मृत्यु से त्रास देती रहती हैं। हे मातेश्वरी! हम तेरे द्वार पर इसलिए आये हैं कि तू हमें मृत्यु के त्रास से पार कर सकती हैं। हम मृत्यु नहीं चाहते, वैज्ञानिक बनना चाहते हैं, हम मृत्यु से पार होना चाहते हैं। नाना प्रकार के त्रासों को नहीं चाहते।

मेरे प्यारे! वेद का मन्त्र कहता है, हे माता! तू हमें अपने में धारण कर, धारण करने का अभिप्राय, अपने में धारण करती हुई तू इस संसार सागर से हमें पार ले चल, हमारे जीवन का जो एक मौलिक उद्देश्य है वह केवल यही है कि हम अपने जीवन को इस संसार से पार ले जाना चाहते हैं। हे माता! तेरे ही गर्भस्थल में यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड, नाना प्रकार की आभाएं सब तेरे ही गर्भस्थल में ओत-प्रोत हैं। हम उन्हें जानना चाहते हैं और तेरे समीप आना चाहते हैं। तू अपने में हमें धारण कर। तू वरणीय है। हम तुझे अपना वरण बनाना चाहते हैं। जैसे यज्ञशाला में यजमान वरण को चुनता है, वरण बनाता है इसी प्रकार जैसे प्रातःकाल में सूर्य की नाना प्रकार की किरणें आ करके इस दिवस को अपना वरण बना लेती है और वरण बना करके अन्धकार को अपने में धारण कर लेती हैं, इसी प्रकार हम अन्धकार से पार होना चाहते हैं। हे माता! तू हमें अपने में धारण कर।

आओ मेरे प्यारे! आज मै। तुम्हें विशेष चर्चाएं प्रकट करने नहीं आया हूँ। मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ। केवल परिचय देने के लिए आया हूँ और वह परिचय क्या है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, नाना रूपों में उस प्रभु को अपने में दृष्टिपात करते हुए इस संसार सागर से पार होना चाहते हैं। यह है बेटा! आज का वाक्य। अब समय मिलेगा, मैं शेष चर्चाएं तुम्हें कल प्रकट करूंगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि माता वसुन्धरा की याचना करते हुए, नाना प्रकार के विज्ञान को जानते हुए, आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करना चाहते हैं और प्रवेश करके मृत्यु से पार होना चाहते हैं। यह है बेटा! आज का वाक्य, अब मुझे समय मिलेगा, मैं शेष चर्चाएं तुम्हें कल प्रकट करूंगा। आज का वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है, कल मुझे समय मिलेगा, मैं आध्यात्मिक और भौतिकवाद की आभा में ले जाने का तुम्हें प्रयत्न करूंगा। आज का वाक्य समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा। इसके पश्चात् हमारी वार्ता समाप्त हो जायेगी। स्थान : दुर्गयाना मन्दिर, अमृतसर। 28 04 1980

२ द्वितीय अध्याय धर्म का मर्म 29 04 1980

जीते रहो! देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भान्ति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद-वाणी में उस मेरे देव, जो इस संसार का नियन्ता है अथवा निर्माण करने वाला है जो विज्ञानमयी स्वरूप माना गया है, आज हम उस मनोहर देव की महिमा का गुणगान गाते चले जा रहे थे। क्योंकि प्रत्येक वेदमन्त्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है। क्योंकि जितना भी ज्ञान और विज्ञान हमें इस संसार में दृष्टिपात आ रहा है इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में वह चेतना हमें दृष्टिपात् आती रहती है। सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक माला के सदृश है, जिस प्रकार माला के मनके एक सूत्र में पिरोए हुए रहते हैं और सूत्र का, मनकों का, दोनों का समन्वय होने से एक माला कहलाती है। हमारे यहाँ कोई नवीन वाक्य नहीं है। परम्परागतों से ही मानव की अपनी आभा में उड़ान उड़ने की स्वाभाविकता उसके हृदय में है क्योंकि प्रत्येक मानव यह चाहता है कि मेरा जीवन ज्ञान और विज्ञान में परिणत होता रहे और मेरे निकट मृत्यु नहीं आनी चाहिए। प्रत्येक मानव की यह आकांक्षा लगी रहती है कि मेरी मृत्यु नहीं होनी चाहिए और यह भी चाहता है कि मेरे मानवत्त में एक धर्मज्य होना चाहिए। मेरा जीवन महान् बनना चाहिए और मैं धर्म के मर्म को जानने वाला बनूं। प्रत्येक मानव परम्परागतों से ही इन वाक्यों के ऊपर चिन्तन करता रहता है और मनन भी करता रहा है। मुझे बहुत से महापुरुषों की वार्ताएं स्मरण आने लगती हैं जिनके जीवन में एक आभा, उनके जीवन के अमूल्य अनुभव, मानव के जीवन का उत्थान कर देते हैं।

धर्म क्या है?

मेरे प्यारे! मुझे स्मरण आता रहता है एक समय महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज, महर्षि प्रवाण के द्वार पर जा पहुंचे। महर्षि प्रवाण ने वशिष्ठ मुनि महाराज से कहा कि महाराज हम धर्म को जानना चाहते हैं कि यह धर्म क्या है? और जिस धर्म को ले करके हम अपने को धार्मिक, मर्मज्ञ और महान् बना सकें क्योंकि धर्म के मर्म को जानने वाला इस संसार में महान् कहलाता है। जब यह वाक्य महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने श्रवण किया तो वशिष्ठ मुनि महाराज बोले कि मेरे विचार में तो यह आता है 'वेदाम् ब्रह्मणः इन्द्रास्थाम् चक्षु सोगानी गथम्प्रवाहवृते देवतम् रथः' हे प्रवाण! यह जो धर्म है यह मानव की इन्द्रियों में समाहित रहता है। धर्म कोई बाह्य जगत् का नाम नहीं हैं बाह्य जगत् को दृष्टिपात् करने वाला जिसका बाह्य-जगत् आयतन कहलाता है, वह जिससे दृष्टिपात् कर रहा है धर्म उसी में समाहित रहता है। प्रत्येक मानव परम्परागतों से ही अपनी इन्द्रियों पर अनुशासन करता रहा है क्योंकि जब तक मानव अपनी इन्द्रियों पर अनुशासन नहीं कर पाता तब तक वह धर्म के मर्म को नहीं जान सकता। आज कोई भी मानव धर्म को जानना चाहता है, धर्म की बेला में जाना चाहता है तो वह मौन हो करके प्रत्येक इन्द्रिय पर विचार-विनिमय प्रारम्भ कर देता है।

मुझे बेटा! वह काल स्मरण आता रहता है जिस काल में उद्दालक गोत्र में जन्म लेने वाले महर्षि सुकेता और कृतिधानुः गोत्रों में जन्म लेने वाले ब्रह्मचारी करन्धिजन रेवक मुनि महाराज के द्वार पर पहुंचे तो उन्होंने भी धर्म को जानने की जिज्ञासा प्रकट की। परन्तु उस सभा में महर्षि प्रवाण, महर्षि तिलक, महर्षि दालभ्य, महर्षि श्रुतकेतु और भी नाना ऋषि विद्यमान थे। रेवक मुनि महाराज गाड़ीवान कहलाते थे। इनको 101 वर्ष हो गए थे गाड़ी के नीचे अपने जीवन को व्यतीत करते हुए, क्योंकि मानव का जीवन तपस्वी होना ही चाहिए। तो जब गाड़ीवान रेवक से यह प्रश्न किया गया कि महाराज, हम मृत्यु से पार होना चाहते हैं। अब मुनिवरो देखो! ऋषि

धर्म का मर्म

मुनियों की एक विचारधारा है। एक ऋषि से प्रश्न कर रहा है कि धर्म क्या है? एक ऋषि से यह कहता है कि महाराज! मृत्यु को जानना चाहता हूँ। मृत्यु से कैसे पार होंगे? क्योंकि प्रत्येक मानव प्रयास करता रहा है कि हमारी मृत्यु नहीं होनी चाहिये। एक मानव यह प्रयास करता रहा है कि मैं जब तक धर्म को नहीं जानूंगा तब तक मृत्यु से पार नहीं हो सकता। तो मेरे प्यारे! जब यह वाक्य उनके समीप आया तो रेवक मुनि महाराज ने कहा कि मृत्यु से मानव को पार होना है तो प्रत्येक इन्द्रिय पर अनुशासन करना होगा। अब महर्षि वशिष्ठ भी यही वाक्य कह रहे है। रेवक मुनि भी यही वाक्य कह रहे है। जब ऋषि-मुनियों के यह वाक्य स्मरण आते रहते हैं तो हृदय प्रायः गद्गद् हो जाता है और मैं यह कहा करता हूँ कि उनके जीवन में कितना महान् अनुभव और अनुसन्धान है।

मन-प्राण समन्वय

ऋषि यह कहता है कि हमारी जो इन्द्रियां हैं जैसे हमारे जो नेत्र हैं उन पर अनुसन्धान करना है। नेत्र क्या हैं? नेत्रों के साथ में एक मनस्तत्व लगा हुआ है, एक प्राणतत्व लगा हुआ है। तो मुनिवरो! मनस्तत्व जब नेत्रों के समीप होता है तो संसार की विभक्त क्रिया इसके द्वार पर आ जाती है। विभक्त करना क्या है? एक मानव अपने कुटुम्ब का परिचय दे रहा है। कुटुम्ब का परिचय देते हुए विभक्त क्रिया आ रही है। मानव के नेत्रों के पटलों पर चित्रावलियों का चित्रण हो रहा है। मेरे प्यारे! माता का चित्र आता है उसी प्रकार का भावान्तर हो जाता है और पुत्री का आता है तो उसी प्रकार का भावान्तर होने लगता है 'ममत्वानि पुत्राम् पतस्ति देवाः' और जब पत्नी का चित्र आता है तो उसी प्रकार का भावान्तर आने लगता है। तो यह विभक्त क्रिया कहाँ से आ गयी है? कौन विभाजन कर रहा है? एक मानव जागरुक विद्यमान है। नेत्रों के साथ मनस्तत्व लगा हुआ हे, प्राण तत्व लगा हुआ है वह विभाजन कर रहा है। विभक्त क्रिया चल रही है। जब शान्त मुद्रा में हो करके विभक्त क्रिया को एक सूत्र में लाता है तो अन्तर्हृदय में दोनों के समन्वय होने से चेतना का आभास होने लगता है। चेतना का आभास होते ही अन्तरात्मा में एक प्रकाश सा होता है। यह प्रकाश दो वस्तुओं के मिलान को ही कहते हैं, दोनों के समन्वय को कहा जाता है। दोनों का समन्वय हुआ और दोनों के समन्वय होने के पश्चात् और दोनों का विकल्प विभाजन हो गया है तो विभक्त क्रिया का प्रारम्भ हो गया।

मुनिवरो! नेत्रों की ज्योति का एक वृत्त बनता है। वही जो अपने परिवार, कुटुम्ब को दृष्टिपात कर था, वही पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश करता है और पृथ्वी के गर्भ में प्राण और मनस्तत्व दोनों को दृष्टिपात् करने लगा है। जब अपने विशेष मन और विश्वभान मन दोनों का समन्वय हो करके पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश करता है तो नेत्रों की ज्योति अन्तर्मुखी बन करके विज्ञान में रमण होने लगती है। नाना प्रकार की धातुओं को दृष्टिपात् करने लगती है। वही नेत्र हैं जो पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश कर गये हैं। वही एक अन्तर्मुखी ज्योति है जो वैज्ञानिक बन करके विज्ञान में एक महान् पारायण होता है और वैज्ञानिक बन करके वह नाना प्रकार की धातुओं के ऊपर अन्वेषण करने लगता है।

मुनिवरो, देखो इसको भी त्याग दिया जाता है तो शब्द के ऊपर नेत्रों के साथ में जो मानव की आभा रमण कर रही है, वह सूर्य के गर्भ में प्रवेश कर जाती है। सूर्य के गर्भ से नाना प्रकार की तरंगें आती रहती हैं, नाना प्रकार की किरणें आती रहती हैं। उन किरणों के ऊपर जब अन्वेषण करने लगता है तो नेत्रों का समन्वय होने से दिव्यता मानव के हृदय में प्रवेश करने लगती है, मानव का जीवन व्यापक बनने लगता है। संकीर्णता को उसने त्याग दिया है। वह विज्ञान के युग में प्रवेश कर गया हैं नेत्रों से ही नाना प्रकार के तारा मण्डलों की गणना करने लगता है। गणना करता हुआ मनस्तत्व और प्राणतत्त्व दोनों का समन्वय होने लगा है। वह बाह्य-जगत् और आन्तरिक जगत् दोनों के समन्वय में लग गया हैं लग जाने के पश्चात् महर्षि रेवक मुनि महाराज कहते हैं कि वही

नेत्रों की आभा जब छटा बन करके सूर्यमण्डल में प्रवेश कर जाती है, सूर्य-मण्डल से जो नाना प्रकार की किरणें चलती रहती हैं उन किरणों के ऊपर अनुसन्धान करता है। नाना प्रकार की किरणें संसार को तपाती रहती हैं, कोई किरणें माता के गर्भ में प्रवेश करती हैं, शिशु को पनपा रही हैं, कोई किरणें पृथ्वी-मण्डल को पनपा रही हैं, कोई किरणें हैं जो चन्द्र लोकों को पनपा रही हैं। 'विज्ञानाम ब्रह्मणे मनस्ताम्।' मेरे प्यारे! यही नेत्रों की ज्योति अन्तर्मुखी बन करके मनस्तत्व प्राणों के साथ में रमण करती हुई अन्तरिक्ष में प्रवेश कर जाती है जहाँ शब्दों का आदान-प्रदान हो रहा है। जहाँ शब्दों के ऊपर मानव अन्वेषण कर रहा है अथवा अनुसन्धान कर रहा है।

एक समय मेरे प्यारे! मुझे स्मरण आता रहता है, उद्दालक गोत्र में जन्म लेने वाले विश्वेश्रोदकेतु अध्ययन कर रहे थे, वेदमन्त्र यह कह रहा था 'समम् ब्रह्माम् चित्राम् रथम् ब्रह्मणे व्यापकम् देवः वेदाम् वृत्म ब्रह्मण अस्वतुम् देवा चित्रम् रथाः कि इस अन्तरिक्ष में नाना शब्द विद्यमान होते हैं और शब्दों के साथ में चित्रावलियां भी विद्यमान होती हैं। मानव इन नेत्रों से तो दृष्टिपात् नहीं कर सकता था। इसकी निजी ज्योति को जो बाह्य जगत् को दृष्टिपात कर रही थी मन के द्वारा, प्राण के द्वारा ले गए। मुनिवरो! देखो वह समाधिस्थ हो गये और समाधिस्थ होने के पश्चात् जब मन और प्राण को एक सूत्र में लाना उन्होंने प्रारम्भ किया तो प्राण की आभाओं से पार होने लगे, जब त्रिवेणी के स्थान पर दोनों की प्रतिक्रिया सम्वेत होने लगी, गति करने लगी तो इस आभा में रमण करने वाला त्रिवेणी का जो स्थल है उसमें एक अभ्रेकृति होती है जिसको हम कृतिका कहते हैं, वह तीन कृतिका कहलाती हैं। तीन कृतिका में जब प्राण और मन की एक सूत्र में आ करके धुक्धुकी लगती है तो कृतिका गति करने लगती है। जब कृतिका गति करने लगती है तो ब्रह्मरन्ध में उनकी गति होनी स्वाभाविक हो जाती है। गति होनी जब प्रारम्भ हो जाती है वह तीव्रता से रमण करती है प्राण और मन दोनों की धुक्धुकी से, श्वेताक ब्रह्मणा एक नाड़ी होती है उस नाड़ी का समन्वय अन्तरिक्ष से हो जाता है। तो मेरे प्यारे! अन्तरिक्ष में रहने वाला जो शब्द है, जो अन्तरिक्ष में रमण कर रहा है उनकी प्रतिभा आनी प्रारम्भ हो जाती है और जब उनकी प्रतिभा प्रतिभाषित होने लगती है तो ऐसा विचार आता है कि योगेश्वर उन चित्रों को दृष्टिपात करने लगता है जो चित्र उनके महापुरुषों के, पिता, महापिता के, पड़पिताओं के चित्र जो शब्दों के साथ में गति कर रहे हैं वह मानव के चित्त में विद्यमान होने लगते हैं। क्योंकि चित्त में वह जो संस्कार होते है, जो प्रतिभा होती है जब वह चित्र आने प्रारम्भ हो जाते हैं तो ऐसा ऋषियों ने वर्णन किया है, कि जब समाधिष्ठ होने के पश्चात् चित्र आने प्रारम्भ हो जाते हैं तो इन चित्रों को वैज्ञानिक नाना प्रकार की चित्रावलियों में दृष्टिपात् करते हैं। वह समाधिष्ठ होने वाला महापुरुष मन और प्राण दोनों एक सूत्र में ला करके जो शब्द हैं उन शब्दों को दृष्टिपात करने लगता है।

स्वार्थ त्याग ही मृत्यु विजय

तो मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें गम्भीर क्षेत्रों में ले जाना नहीं चाहता हूँ। केवल आज मैं तुम्हें परिचय देने के लिए आया हूँ और वह परिचय क्या है? परिचय यह कि परम्परा का जो हमारा सिद्धान्त है जो वेद का सिद्धांत है, वेद की धाराएं हैं उनको अपनाते हुए हम अपने जीवन को मृत्यु से पार ले जाना चाहते है, मृत्यु को लांघना चाहते हैं। जब मुनिवरो! नेत्रों में कोई पाप नहीं रहा, संकीर्णता नहीं रही, नेत्रों में पाप दृष्टि नहीं रही तो नेत्र मृत्यु से पार हो गये। नेत्र मृत्यु से पार उस काल में होते हैं जब उसकी सुदृष्टि हो जाती हे, देव प्रवृत्ति हो जाती है, देव और दिव्य-दृष्टि बन जाती है, अन्तरिक्ष में रहने वाले शब्दों को दृष्टिपात करने लगता है। अपने मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में लाने का प्रयास करता है। तो मेरे प्यारे! वह नेत्र मानव के मृत्यु से पार हो जाते हैं। मृत्यु को लांघ जाते हैं। मृत्यु को कौन लांघता है? मेरे पुत्रो! मुझे स्मरण है एक समय देवताओं ने यह विचारा कि आज हम मृत्यु से पार होना चाहते हैं। तो देखो! वह उद्गीत गाने वाला उद्गाता कौन, नेत्र बन सकते हैं। वह नेत्रों के समीप पहुंचे

और नेत्रो से कहा, हे नेत्र! तुम हमारे उद्गाता बनो। उन्होंने कहा, बहुत प्रिय, परन्तु उनमें स्वार्थपरता आ गयी। जिस काल में भी स्वार्थपरता आ जाती है उसी काल में मानव मृत्यु के मुखारविन्दों में प्रवेश कर जाता है। स्वार्थपरता को त्यागना ही मृत्यु से पार होना है। परन्तु जब उद्गाता ने गीत गाना प्रारम्भ किया, गीत गाता हुआ नेत्र मेरे प्यारे! वह स्वार्थपरता में परिणत हो गया जहाँ सुदृष्टिपात कर रहा था वहाँ कुदृष्टि भी पान करने लगा, अशुद्ध भी दृष्टिपात करने लगा। उसी काल में दैत्यों को यह प्रतीत हो गया था कि देवता नेत्रों को उद्गाता बना करके हमें विजय करना चाहते हैं। मृत्यु के त्रासी वाले दैत्य जब उनके द्वारा आये तो उन्हें छेदन कर दिया, पाप से छेदन कर दिया। नेत्र जहाँ सुदृष्टिपान कर रहे थे वहाँ अशुद्धता को दृष्टिपात करने लगे। संकीर्णता उनमें आ गयी, स्वार्थपरता आ गई। मुनिवरो! देखो जब स्वार्थपरता आ गयी, वहीं मृत्यु की आभा में परिणत कराने वाली तरंगें ओतप्रोत हो गयी। मृत्यु ने नेत्रों को आच्छादित कर दिया और आच्छादित करने के पश्चात् देवता ह्रस हो गये। देवता जब ह्रस हो गये, देव-प्रवृत्तियां जब ह्रस हो गयी, अब क्या करें?

हमारे वाक्यों के उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि प्रत्येक इन्द्रियां जो हमारी हैं इन्हीं से हम दैत्य बनते हैं, इन्हीं से हम देवता बन जाते हैं। इन्हीं से योगेश्वर बनते हैं। इन्हीं से हम संकीर्णता में, स्वार्थपरता में आ करके दैत्य बन जाते हैं। विचार-विनिमय क्या? मानव को अपने जीवन को व्यापकवाद में ले जाना हैं आज मैं व्यापकवाद की चर्चा कर रहा था कि नेत्रों ने संकीर्णता को त्याग दिया है। मुझे स्मरण आता रहा है जब हम पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन करते रहे तो एक समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा कि नेत्रों से हम मौन रहना चाहते हैं। नेत्रों का मौन भी होता है। आज कोई मानव योगी बनना चाहता है, योगेश्वर बनना चाहता है, योग में जाना चाहता है तो, नेत्रों से मौन हो जाओ। नेत्रों से कैसे मौन होता है? नेत्रों को शान्त मुद्रा में ले आओ और हृदय में ले जाओ जहाँ बाह्य जगत का सूर्य, तारामण्डल इस ज्ञान-विज्ञानमय जगत् को हम दृष्टिपात कर रहे हैं आज उसको हम अपनी अन्तरात्मा में, अन्तर्हृदय में ले जाकर के मौन हो जाएं। नेत्रों को शान्त कर लें। नेत्रों को शान्त करके इस भव्य जगत् को हम आन्तरिक जगत् में दृष्टिपात् करते रहें। जब आन्तरिक जगत् में हम दृष्टिपात करते रहेंगे, नेत्रों को मौन करके हम आभा में परिणत हो जाएंगे।

मुझे स्मरण है बेटा! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब हमें वेदों का अध्ययन कराते रहे तो वेद-मन्त्रों को ही दृष्टिपात करते रहे और बारह-बारह वर्ष के उन्होंने लगभग बारह अनुष्ठान किए। तो मुनिवरों नेत्रों में दिव्यता आ गयी। नेत्रों में ज्योति आ गई। वह रात्रिकाल में इन तारा-मण्डलों की माला बना लेते थे। माला बना करके इसको धारण करते रहे। माला को धारण करके जो वेद का मन्त्र कहता है हम उस सूत्र की कल्पना करते हैं जिस सूत्र में सर्वत्र ब्रह्माण्ड पिरोया हुआ है। जिस सूत्र में ज्ञान और विज्ञान पिरोया हुआ है उस सूत्र के ऊपर हम स्थिर हो जाते हैं और स्थिर हो जाने के पश्चात् जिसे योग कहते हैं हम योग में अपने को ले जाते हैं। तो विचार-विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें यह विचार दे रहा था कि हम नेत्रों के ऊपर अनुसन्धान करते रहें। इन नेत्रों से हम सदैव सुदृष्टिपात करते हुए इन्हें धर्ममय बनाते रहें। हम धर्म के मर्म को जानना चाहते हैं। हम धर्म में प्रवेश करना चाहते हैं।

व्यापकवाद

मुझे स्मरण है हमारे यहाँ ऋषि-मुनि जब मुनिवरो! नेत्रों का अनुसन्धान करते रहे। जिस भी काल में एक इन्द्रिय को अनुसन्धानिक बनाने के लिए मेरे पूज्यपाद गुरुदेव नेत्रों से किसी पक्षी को दृष्टिपात् करते थे तो वह मौन हो जाता था। मृगराज भी नेत्रों से नेत्रों का समन्वय होते ही हिंसक न रह करके अहिंसक बन जाते हैं मुनिवरो देखो यह व्यापकवाद कहलाता है। हम सबसे प्रथम यह विचार लें कि हम 'अहिंसा परमो धर्मः' बनना चाहते हैं। प्रत्येक मानव 'अहिंसाधर्मः' की विचारधारा को ले करके जाना चाहता है। कहाँ जाना चाहता हैं? प्रभु के गर्भ में

प्रवेश करना चाहता है अहिंसा का प्रारम्भ सबसे प्रथम नेत्रों के द्वार पर होता है। हम नेत्रों की ज्योति को विचारक बनाएं और विचारक बनाते हुए हमारी ज्योति में प्रीति होनी चाहिए, धर्म होना चाहिए। हमारे नेत्रों की ज्योति में ज्योतिवान की छटा रहनी चाहिए उसकी लटा रहनी चाहिए जिससे हमारा मानव जीवन पवित्र और महान् बनता चला जाए। आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिय आया हूँ कि हमारे यहाँ ऋषि-मुनि एक-एक इन्द्रिय के ऊपर अनुसन्धान करते रहे हैं। योग में प्रवेश करके नाना प्रकार की चित्रावलियों को, नाना प्रकार की आभाओं को शब्दों के रूप में दृष्टिपात् करते रहे हैं।

मुझे स्मरण है एक समय महर्षि दगदग मुनि महाराज के द्वारा कुछ जिज्ञासु उनके द्वार पर पहुंचे। महर्षि दगदग मुनि महाराज से जिज्ञासुओं ने कहा महाराज! हमने वेद मन्त्रों में यह अध्ययन किया है कि वेदमन्त्र हैं 'शब्दम् शब्दश्चताम् शब्दम् ब्रह्मणे वनास्तते देवाम ब्रह्मणे कृतम् आभ्याम् अन्तरिक्षम् व्रतो देवाः।' हे भगवन्! यह वेदमन्त्र क्या है। दगदग मुनि महाराज ने जिज्ञासुओं से कहा कि यह वेदमन्त्र यह कहता है कि मानव के नेत्रों की ज्योति इतनी सूक्ष्म बन जाती है कि वह अन्तरिक्ष में विचरण करने वाले अपने जो पूर्वज हैं, अपने जो वंशज हैं, जो उनकी वार्ता प्रकट हो रही है जो उन्होंने किसी काल में वार्ताएं प्रकट की हैं, वह वार्ताएं अन्तरिक्ष में ओत-प्रोत रहती हैं और वह जो इन आभाओं को ले करके अन्तरिक्ष में रमण करता है अपने महापुरुषों के चित्रों को अपने अन्तर्हृदय में चित्रण करने लगता है। वह जो चित्रण करता है, नेत्रों को अन्तर्मुखी बनाने से, मन और प्राण की आभा को एक आभा में परिणत करने से बना सकता है।

ऋषि दगदग महाराज ने अपने वाक्यों में कहा है, हे ऋषियों! हे जिज्ञासुओं! वह वाक्य तुम क्यों जानना चाहते हो? इस वेदमन्त्र को तुम इस रूप में क्यों लाना चाहते हो? उन्होंने कहा कि महाराज! हम इसलिए लाना चाहते हैं कि वेदमन्त्र में जो वाक्य आता है वह यथार्थ है, क्योंकि वेद ईश्वरीय वाणी है। ईश्वर का ज्ञान और विज्ञान जितना भी है वह महत्ता में रहता है। हम उसका साक्षात्कार करना चाहते हैं। उन्होंने कहा बहुत प्रियतम! तो महर्षि दगदग मुनि महाराज ने कुछ वेद-मन्त्र उच्चारण किये और नेत्रों की ज्योति से उन्होंने आह्वान किया और आह्वान करने से वेदमन्त्रों की आभा में, लता में रमण करने के पश्चात् उसमें नाना प्रकार की चित्रावलियों के चित्र दृष्टिपात् आने लगे।

उन्होंने कहा, देखों यह विज्ञान है। यह यौगिक विज्ञान है जो नाना रूपों में शब्द मुझे स्मरण आ रहे हैं। मुनिवरो! देखो महर्षि दगदग मुनि महाराज जहाँ वे शब्दों के योगी थे वहाँ विज्ञान में भी उनकी महान् गति रही, विज्ञान में उनका जीवन शिरोमणी रहा हैं उन्होंने महर्षि हरिदत्त मुनि महाराज के द्वारा बहुत अध्ययन किया। ज्ञान और विज्ञान में उन्होंने बहुत उड़ाने उड़ी हैं। उन्होंने कहा है कि प्रत्येक वेदमन्त्र के द्वारा नाना प्रकार के चित्रों का निर्माण होता रहा है और उन चित्रों के निर्माण होने से अन्तरिक्ष में रहने वाले जो शब्द हैं, जो सहस्रों वर्षों पुरातन के शब्द हैं वह इन चित्रों में साक्षात्कार दृष्टिपात् आते रहे हैं।

नेत्र इन्द्रिय अनुसंधान

महर्षि दगदग मुनि महाराज के द्वारा नाना जिज्ञासु मौन हो गये और उन्होंने कहा महाराज! हम इसको कैसे प्राप्त कर सकते हैं? उन्होंने कहा नेत्रों की ज्योति के ऊपर अनुसन्धान किया जा सकता है। उन्होंने नेत्रों की ज्योति पर अनुसन्धान करना आरम्भ किया। प्रत्येक इन्द्रियों के विषय को जानना ही हमारे यहाँ धर्म के मर्म को जानना है। धर्म क्या है? नेत्रों की ज्योति को हम कहाँ ले जा सकते हैं? एक मानव पति-पत्नी अपने कुटुम्ब का परिचय दे करके अन्तरिक्ष में अपनी ज्योति को ले जा सकते हैं। वह अन्तर्मुखी हो करके नेत्रों की ज्योति से 'अहिंसा परमोधर्मः' की आभा को ले करके मनस्तत्व की धाराएं उसमें ओत-प्रोत हो जाती हैं।

मुनिवरो देखो तब तक हम अपने को महान् नहीं बना सकते जब तक हम इन्द्रियों के ऊपर अनुशासन नहीं कर पाएंगे और जब तक नेत्रों के ऊपर हमारा अनुशासन, हमारी प्रतिक्रियाएं, हमारा देवभाव, देवी सम्पदा हमारी उस काल में उत्पन्न होती है जब हमारे नेत्रों की ज्योति शरीर तक सीमित न रहे, अपने कुटुम्ब तक सीमित न रहे, राष्ट्र तक सीमित न रहे। वह मुनिवरो! विज्ञान तक सीमित बन जाए, विज्ञान में रमण करती हुई आध्यात्मिकवाद में प्रवेश कर जाए। वह नेत्रों की ज्योति कहलाती है। अन्तर्मुखी बनना ही अन्तर्हृदय की वार्ता को अन्तर्हृदय में प्रवेश कराना है। बाह्य जगत् को आन्तरिक जगत् में, अन्तर्हृदय जगत् में, अन्तर्हृदय में जब अन्तर्मुखी से दृष्टिपात् करने लगते हैं उस समय हम इन्द्रियों पर अनुशासन कर सकते हैं।

आज बेटा! मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट कराने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव को मृत्यु से पार होना है। मृत्यु को जानना है। मृत्यु से वही मानव पार होता है जो प्रत्येक इन्द्रिय को मृत्यु से पार करा देता है। मृत्यु से इन्द्रिय का पार होना क्या है कि संकीर्णता को त्यागना है। पापाम् संकीर्ण भावना को त्यागना है और व्यापकता में लाना है। उसको अन्तर्मुखी हो करके इस अन्तर्जगत् को, जो दृष्टिपात आ रहा है, उसको नेत्रअन्तर्मुखी होकर अपने अन्तर्हृदय में जब अनुभव करने लगते हैं तो मानव का एक इन्द्रिय मृत्यु को पार हो गया है। मैं बेटा! तुम्हें उच्चारण करूंगा, नेत्रमृत्यु से कैसे पार होते हैं? नेत्रजब मृत्यु से पार हो गया तो नेत्रअदिति बन गया। अदिति कौन होता है? जो प्रकाश देता है। वह परिधि को त्याग देता है, संकीर्णवाद को त्याग देता है। वह अदिति बन करके नाना प्रकार के विज्ञान का मौलिक गुण बन जाता है। वह प्रकाश ही प्रकाश देने लगता है। जो भी नेत्रों के समीप आता है, नेत्रों की ज्योति को दिव्य दृष्टिपात करके अन्य प्राणी भी दिव्य बन जाते हैं।

आओ मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या, प्रत्येक मेरा प्यारा भोला ऋषि-मण्डल अपनी इन्द्रियों पर अनुशासन करने वाला बने। अनुशासन कैसे बनता है? विचारों से बनता है। प्राण और मन दोनों की आभा को एक सूत्रमें लाने से बनता है।

आज का हमारा वेदमन्त्रक्या कह रहा था? वेद-मन्त्रयह कह रहा था? कि माला के प्रत्येक सूत्रों को विचारना हैं एक माला है, माला में मनके हैं और एक धागा अर्थात् एक सूत्रहै। उस सूत्रमें पिरोई हुई माला है। यह जो ब्रह्माण्ड है, यह जो जगत् है यह एक माला है और वह एक सूत्रमें पिरोई हुई है, उस सूत्रका नाम चेतना है। उस चेतना तक जाना ही हमारा मानवीय कर्त्तव्य कहलाता है। आओ मेरे प्यारे! आज का हमारा वेद का आचार्य क्या कह रहा है? कि जब हम प्रत्येक इन्द्रिय के ऊपर अनुशासन करेंगे तो ज्ञान और विज्ञान समीप आना प्रारम्भ हो जाता है।

आज मैं बेटा! विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार यह देता हुआ जा रहा था कि हमारे जीवन में व्यापकवाद आना चाहिए। हम धर्म से, मृत्यु से पार होना चाहते हैं। कल समय मिलेगा तो मैं तुम्हें जैसे नेत्रों को मृत्यु से पार ले गया हूँ इसी प्रकार वाणी को मृत्यु के पार ले जाने का प्रयास करूंगा। आज हमारी इस वाक्य की भूमिका बन गई है। वह भूमिका क्या है? प्रत्येक इन्द्रियों में धर्म कैसे समाहित रहता है? और कैसा विज्ञान समाहित रहता है? यह वाक्य बेटा! मैं कल प्रकट करूंगा। आज का वाक्य हमारा समाप्त होने जा रहा है। कल मुझे समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएं कल तुम्हें प्रकट करूंगा।

अदिति

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या है? मुनिवरो! मृत्यु से पार ले जाना है। प्रत्येक मानव मृत्यु

से पार होना चाहता है। मृत्यु से पार होने वाला जो प्राणी है वह अपनी इन्द्रियों को मृत्यु से पार ले जाने के लिए तत्पर हो जाए, इसके ऊपर अनुसन्धान करने वाला बने, यही मानव का धर्म है, यही मानव का विज्ञान है। मेरे प्यारे देखो, यह विज्ञान परम्परागतों से ही ऋषिमुनियों के मस्तिष्कों में नृत्य करता रहा है, उनकी धर्मज्ञ जातियों में नृत्य करता रहा है। तुम्हें स्मरण होगा पुत्रों हमारे यहाँ ऋषि-मुनि अपनी समाधि के द्वारा दोनों का समन्वय करके अन्तरिक्ष की उड़ान उड़ते रहे हैं। विचार आता रहता है मैंने तुम्हें कई काल में वर्णन कराते हुए कहा है नेत्रों ने जब मृत्यु को लांघ दिया तो वह अदिति बन गया है, नेत्रअदिति बन गया। अदिति नाम सूर्य का है, अदिति नाम परमात्मा का भी है।

मुनिवरो! हमारे आज के वाक्य का अभिप्राय क्या कि हम उस प्रभु को जानें तथा उसकी महिमा का गुणगान करते हुए मृत्यु से पार हो जाये। आज का वाक्य समाप्त। अब वेद का पाठ होगा। 29-4-1980, स्थान दुर्गयाना मन्दिर, अमृतसर।

३ तृतीय अध्याय अहिंसा परमोधर्मः 30 04 1980

जीते रहो! देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भान्ति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा। आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्रवेद-वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है क्योंकि वह परमपिता-परमात्मा प्रतिभाशाली है। जितना भी यह पिण्ड और ब्रह्माण्ड एक ही रूपों में हमें दृष्टिपात् आ रहा है। इस सर्वत्रब्रह्माण्ड, पिण्ड का जो रचयिता है वह मेरा अमूल्य देव है। वह संसार का नियन्ता अथवा निर्माण करनेवाला है। आज हम उस अपने देव की प्रायः महिमा का वर्णन करते चले जाये।

उस मेरे देव के पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों एक ही सूत्रके मनके माने जाते हैं। जैसे माला के मनके माने जाते हैं। जैसे माला के मनके एक ही सूत्रमें पिरोए जाते हैं। इसी प्रकार पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों एक ही सूत्रके मनके कहलाये गये हैं। परन्तु जब हम इन वाक्यों पर विचार-विनिमय प्रारम्भ करते हैं तो प्रायः ऐसा दृष्टिपात होने लगता है जैसे सर्वत्रब्रह्माण्ड इस पिण्ड में ओत-प्रोत है और यह जो पिण्ड है यह ब्रह्माण्ड में ओतप्रोत है। तो दोनों एक-दूसरे के पूरक कहलाए गये हैं। परन्तु जब हम इस पर विचार-विनिमय प्रारम्भ करते हैं तो प्रायः ऐसा दृष्टिपात होने लगता है जैसे हम उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान में रमण कर रहे हैं। उसी मेरे देव का ज्ञान और विज्ञान इस सर्वत्रब्रह्माण्ड में ओत-प्रोत है।

आओ मेरे प्यारे! मैं तुम्हें उसी मनके की व्याख्या करना चाहता हूँ। जैसे हमारे यहाँ चक्षु की वार्ता आती रहती है। मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ। केवल कुछ परिचय देने के लिए चला जाता हूँ और परिचय देना हमारा कर्त्तव्य हें यह वाणी उद्गान कर रही है, उद्गीत गा रही है। उद्गान चल रहा है। कैसी पवित्रहै यह महीयसी है, वाणी जो ब्रह्म की गाथा गा रही है। जिस प्रकार यह पृथ्वी सर्वत्रब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है उसी प्रकार इस पिण्ड में वाणी, इस ब्रह्म की व्याख्या अथवा ब्रह्म का गान गा रही है, ब्रह्म का वर्णन कर रही है। उद्गान चल रहा है, शब्दों की रचना हो रही है। परन्तु कैसा रचयिता वह मेरा देव है? शब्द चित्रके साथ में, अन्तरिक्ष में गति कर रहा है। परन्तु वह शब्द ज्यों का त्यों इस पिण्ड में विद्यमान है। वाह रे देव! तेरी कैसी अद्भुत, महत्ता हमें दृष्टिपात आती रहती है। शब्द का चित्रबन रहा है परन्तु शब्द ज्यों का त्यों है। कण्ठ से, हृदय से गान प्रारम्भ हुआ, तालू और रसना के मध्य से वह शब्द अन्तरिक्ष में चला गया और वह शब्द ज्यों का त्यों उस मानव के शरीर में विद्यमान है। उस मानव के शब्दों की प्रतिभा महान् है।

मेरे प्यारे! आज मैं कुछ वेद-मन्त्रों का अध्ययन कर रहा था। लाखों वर्षों पूर्व अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा वेद का अध्ययन किया करते थे अथवा पठन-पाठन की प्रतिक्रियाएं, उसका प्रकार, जटा और धनपाठ में उद्गान गाते रहते थे परन्तु जब हम 'विश्वम् ब्रह्म अन्नाद', मेरे प्यारे! इस मानव के शरीर में कोई नस-नाडी ऐसी नहीं है जहाँ वेद को पोथी विद्यमान न हो। जिस नस-नाड़ी में वेद का ज्ञान न हो, वेद के उच्चारण करने का प्रकार न हो।

परन्तु वह शब्द कहाँ से आ गया? वह वाणी में शब्द कहाँ से आया? यह मानव शरीर रूपी जो पिण्ड है, इस पिण्ड में जो चित्त का स्थान है उसमें जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार विद्यमान रहते हैं और संस्कारों का निर्माण होता रहता है। इस पिण्ड में बाह्य-जगत् और आन्तरिक-जगत् दोनों का समन्वय होता है। जब बाह्य-चित्त और आन्तरिक-चित्त दोनों का समन्वय होता है तो चित्त में जो संस्कार विद्यमान होते हैं चाहे वह बाह्य-जगत् में हों, चाहे आन्तरिक-जगत् में हों परन्तु चित्त में वह अंकुर विद्यमान होते हैं। और जैसे उन अंकुरों की उद्बुद्धता हुई, जब

सहस्रों जन्मों के संस्कारों की उदबुद्धता हो जाती है तो उद्गान प्रारम्भ हो जाता है। शब्दों की रचना होने लगती है। मानव नाना प्रकार के प्रमाण देने प्रारम्भ कर देता है। यह कैसी पवित्रवाणी है, जो वाणी उद्गाता बन रही है, उद्गान गाया जाता हैं देवताओं के लिए वाणी उद्गीत गाती रहती है, असुर उसे छेदन कर देता है। जब असुरों ने उसे छेदन कर दिया, उद्गीत गाना समाप्त हो गया। परन्तु इस वाणी को मृत्यु से पार होना था। यह प्राण के समीप जाती है और प्राण ने इसको अपना लिया। जब वह वाणी इस पिण्ड की परिधि को त्याग करके समष्टि में परिणत हो जाती है तो यही वाणी अग्नि का स्वरूप बन गयी।

अग्नि स्वरूप वाणी

मुझे स्मरण आता रहा है एक समय हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा विनोद कर रहे थे और विनोद में यह उच्चारण कर रहे थे कि प्रभू! यह वाणी अग्नि का स्वरूप कैसे है? हम उस अग्नि को जानना चाहते हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि हे पुत्र! यह वह अग्नि है जो भयंकर अग्नि बन करके स्थूल जगत् को भस्म कर देती। तुम्हें प्रतीत है इस वाणी के कारण राष्ट्र के राष्ट्र अग्नि में प्रवेश कर जाते हैं, अग्नि में चले जाते हैं। इस वाणी के कारण ग्रहों में अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। यह बाह्य जगत् की अग्नि जो काष्ठ में रहने वाली है इसका द्वितीय रूप यह वाणी अग्नि कहलाता है। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने बारह वर्ष तक का अनुष्ठान किया। मुझे स्मरण आता रहता है यह अनुष्ठान उन्होंने ही नहीं किया। बाल्यकाल में जब महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के द्वारा भगवान् राम अध्ययन कर रहे थे तो दोनों का अध्ययन, दोनों की प्रतिक्रियाएं, दोनों का विचार-विनिमय होता रहता था। भगवान् राम एक समय एक वेद-मन्त्रका अध्ययन कर रहे थे। जब भगवान राम सायंकाल में अध्ययन कर रहे थे और अध्ययन करते-करते वह महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के द्वार पहुंचे। वशिष्ठ मुनि महाराज से कहा कि यह वेद-मन्त्रक्या कहता है? मैं इस अग्नि स्वरूप वाणी को जानना चाहता हूँ। महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले, वत्स राम विराजो। प्रायः वेसे तो मध्यरात्रिमें तुम्हारा आना अशोभनीय है परन्तु जब तुम जिज्ञासु हो तो तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर मैं अवश्य दूंगा। क्योंकि महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ब्रह्मवेत्ता थे, ब्रह्मनिष्ठ थे, मृत्यु को उलांघ गये थे। भगवान् राम विराजमान हो गये।

वशिष्ठ कहते हैं, हे राम! यह जो वाणी है वह अग्नि है और वह कैसी अग्नि है? यह मानव का दाह कर देती है। मानव को चिन्तित कर देती है अन्तःकरण को भस्मीभूत कर देती है और इसमें शक्ति के ज्ञान तन्तु हैं उनकों भी यह शोकातुर हो करके भस्म कर देती है। परन्तु इसी अग्नि का जो द्वितीय स्वरूप है मानव को प्रदीप्त बना देती है। मानव को पुरोहित बना देती है। मानव को योगेश्वर बना देती है और मानव को व्याख्याता बना देती है। हे राम! यही तो वाणी है जिससे पुरोहित गान गा रहा है। राष्ट्र का पुरोहित बना हुआ है और पराविद्या को अपनाता हुआ अपने को महान् बनाना चाहता है। यही वाणी है जो मधुर बन जाती है और मधुर बन करके 'अहिंसा परमोधर्मः' की प्रतिभा को मानव जीवन में धारण करा देती है।

हे राम! तुम्हें यह प्रतीत है कि जब हम गान गाते रहते हैं तो हमारे दोनों के गान में सिंह राज हमारी वैदिक ध्वनि को श्रवण कर रहा है। वह श्रवण क्यों कर रहा है, क्योंकि हमारी वाणी में मधुरता आ गयी है हमारी वाणी में 'अहिंसा परमोधर्मः आ गया है। हिंसक प्राणी भी हमारे इन शब्दों को पान कर रहा है क्योंकि वेद ईश्वरीय गान है, वाणी का उद्गान ब्रह्म की गाथा गाने का है। दोनों का जो सूत्रसमन्वय हो जाता है उसी काल में सिंहराज अपनी हिंसा को त्याग देता है क्योंकि हिंसा आत्मा का लक्षण नहीं हैं हिंसा मानव की, आभा की कृति कहलाता है। परन्तु जब हम यह विचारते हैं कि 'अहिंसा परमोधर्मः' मानव का स्वाभाविक गुण है, प्रतिभा है। मेरे पुत्रो! उस काल में जब भी हमें यह प्रतीत होने लगता है कि वास्तव में यह वाणी विशाल अग्नि है, यह अग्नि दूसरों की सूक्ष्म अग्नि को अपने में धारण कर लेती है।

धर्म का मर्म

आओ मेरे प्यारे! मैं तुम्हें विशेषता में ले जाना नहीं चाहता हूँ। केवल दर्शन की चर्चा मुझे करनी है और वह दर्शन क्या कह रहा है? वह जो विशाल अग्नि है वह मानव के जीवन को विशाल और महान् बना देती है देखो, उस अग्नि पर भगवान राम और वशिष्ठ दोनों विचारने लगे। वशिष्ठ मुनि कहते हैं, हे राम! एक समय ब्रह्मा के पुत्रअथर्वा ने यह विचारा कि मैं इस अग्नि को अपने में धारण करना चाहता हूँ और इस अग्नि को मैं जानने के लिए आया हूँ। मेरे प्यारे! अग्नि की सूक्ष्म धाराएं जब बन जाती हैं तो उसको विद्युत कहते हैं। उसको द्यौ भी कहते हैं। मेरे पुत्रो! अग्नि की द्यौ धाराओं पर स्थूल शब्द विद्यमान हो जाता है। और विद्यमान हो करके 'योगम् ब्रह्मणे वृतोः', महर्षि अथर्वा ने यह चिन्तन प्रारम्भ किया कि मैं इस अग्नि को जानने के लिए तत्पर हूँ, वह अग्नि को जानने लगा। शब्द जैसे उद्गान में रमण कर रहा था, परमाणुवाद का एक आकार बन करके, चित्रबन करके वह द्यौ-लोक को जा रहा था।

एक समय वह योग कर रहा था। योग का रथ बन करके द्यौ-लोक को प्रवेश कर रहा था। परन्तु एक समय वह विद्यालय में विद्यार्थियों को हृदय से उद्गान की विवेचना कर रहा था, उसका रथ बन करके द्यौ-लोक को जा रहा था। जब मेरे पुत्रो! देखो जब वह आभा में मौन हो गए, एक समय जब अनुष्ठान करने लगे तो बारह वर्षों का अनुष्ठान किया और बारह वर्ष का अनुष्ठान करके, केवल वाणी को मौन करके अन्तर्हृदय में समाधिस्थ हो गये तथा मन और प्राण दोनों को एक सूत्रमें लाने का प्रयास करने लगे और प्रयास जब करने लगे तो निश्वासी प्राणायाम करके प्राण की प्रतिक्रिया को जहाँ का तहाँ स्थिर कर दिया। स्थिर करने के पश्चात् वह जो रथ अन्तरिक्ष में दृष्टिपात् आने लगा, वह शब्दों के जो रथ बन रहे थे वह शब्दों की, अग्नि की धाराओं में शब्द विद्यमान हो करके अन्तरिक्ष में प्रवेश कर रहे थे, वह शब्द साकार बन करके, रथ बन करके उन्हें बाह्य जगत् में, इस ब्रह्माण्ड के मूल में दृष्टिपात् आने लगे। विचारने लगा ऋषि, कि यह तो अद्भुतता है। वाणी शब्द उच्चारण होते ही उस मानव का उतना आकार बन जाता है। यही आकार विद्युत की धाराओं पर विद्यमान हो जाता है। तो इससे प्रतीत होता है कि वाणी अग्नि बन गयी है और वाणी का अग्नि बन जाना ही मुनिवरो! मृत्यु से पार होना है।

वेदवाणी का प्रभाव

मेरे प्यारे! अथर्वा ने इस वाणी के ऊपर अनुसन्धान किया। इस वाणी के ऊपर विचारने लगा। वेद-वाणी का उच्चारण करने लगा तो मुनिवरो! देखो वाणी में मधुरता आने लगी और कोई भी शब्द सांसारिक कटुता में नहीं लाना उन्होंने सुशोभनीय जाना। परन्तु एक समय वह आ गया, मुनिवरो! बारह वर्ष तक वे मौन रहे। मौन रहने का परिणाम यह हुआ कि उनके चरणों को छूने वाले सर्पराज, सिंहराज आने लगे। एक समय बेटा! वह सामगान गा रहे थे। सामगान गाते-गाते वह उद्गान गा रहे थे। सामगान गाते रहे, गाने का परिणाम यह हुआ वहां कोई मानव नहीं था, केवल प्राणी थे और प्राणियों में कौन थे? सर्पराज थे, सिंहराज थे, मृगराज थे। अपने प्रभु की उद्गानता को वह श्रवण कर रहे थे, पुत्रो! जब वह श्रवण कर रहे थे, श्रवण करते हुए वह मुग्ध हो रहे थे। उस समय महात्मा श्वेतकेतु उनके द्वार पर पहुंचे तो श्वेतकेतु ने दृष्टिपात किया कि महाराजा अथर्वा गान गा रहे हैं, उद्गान चल रहा है। सिंहराज, मृगराज, सर्पराज उनकी वाणी को श्रवण कर रहे हैं और मुग्ध हो रहे हैं। महाराजा श्वेतकेतु भी शान्त हो करके उनके शब्दों को श्रवण करने लगे। तो परिणाम यह हुआ जब अथर्वा ने अपने अनुष्ठान को समाप्त किया तो सिंहराज चरणों को स्पर्श कर रहे थे, मृगराज चरणों को स्पर्श कर रहे थे। यह वाणी कैसी पवित्रहै? यह वाणी कितनी मधुर बन सकती है? यह वाणी कितनी प्रिय बन सकती है? राजा भी ऐसे उद्गान गाने वाले के चरणों में ओत-प्रोत हो जाते हैं। ऐसे महापुरुष के लिए, ऐसे वाणी के उद्गान गाने वाले के लिए राजा और वैज्ञानिक उनके समीप आते रहते हैं।

मेरे प्यारे! मुझे स्मरण आता रहता है जहाँ आध्यात्मिकवाद, मृत्यु को लांघने की चर्चा हम कर रहे थे वहाँ भौतिक विज्ञान भी इसके साथ रमण कर रहा है। क्योंकि हमारे ऋषि-मुनियों के मस्तिष्कों में यह विज्ञान परम्परागतों से नृत्य कर रहा है। वह जो शब्दावलियाँ हैं, आकार बन करके अन्तरिक्ष में रमण कर रही हैं। मुनिवरो! सर्पराज, सिंहराज, मृगराज वाणी के उद्घोष को श्रवण कर रहे हैं, अपने में धारण कर रहे हैं, धारण करते हुए अपने अन्तर्हृदय रूपी गुफा को पवित्रबना रहे हैं। विचार-विनिमय क्या कि वाणी का उद्गान एक महान् कहलाता है। यही वाणी जब प्राण के साथ में लिप्त हो जाती है, प्राण इसे अपना लेता है तो मौन हो जाता है, निःस्वार्थ हो जाता है, उस समय यह जो वाणी कहलाती थी यह अग्नि के रूप में चली गई वह अग्नि बन गयी और अग्नि बन जाने से मृत्यु को पार कर गयी। उसकी मृत्यु नहीं रही। वाणी पवित्रता को प्राप्त होती चली गयी।

विचार-विनिमय क्या? आज मैं उच्चारण कर रहा था भगवान राम और वशिष्ठ मुनि महाराज दोनों की विवेचना चल रही थी, दोनों का विचार-विनिमय हो रहा था। वशिष्ठ मुनि महाराज ने ब्रह्मा के पुत्रअथर्वा की वार्ता प्रकट कराते हुए भगवान राम को यह निर्णय कराया कि हे राम! इस वाणी का आकार बन करके द्यौ-लोक को जाता है, उसको दिव्यता में दृष्टिपात करने वाले भी पुरुष हुए हैं। कुछ यन्त्रों के द्वारा यन्त्रित होते रहे हैं जैसे एक मानव यह विचारता रहता है कि मेरी वाणी में इतना साहस है, उच्चारण कर रहा है, मुनिवरो! संग्राम हो रहा है और संग्राम होते-होते वह उच्चारण कर रहा है, हे मानव! तू अपने को साहसी बना। वाणी से उच्चारण कर रहा है, उसका जो साहस है वह अंकुरित होता रहता है। उसी में अंकुरित होता हुआ मानव को साहसी बना देता है। बुद्धिमान को और बुद्धिमान बना देता है। जैसे विद्यालय में आचार्य शिष्य को मेधावी बना देता है। मेधावी बनाता है वाणी के द्वारा। इसी प्रकार संग्राम करने वाले को उत्साही बना देता है। ऐसे यन्त्रों का निर्माण भी हो जाता है। यन्त्रों का निर्माण करने से मानव को शक्ति प्रदान करता है। ऐसे-ऐसे यन्त्रों को वाणी के माध्यम से निर्माणित किया जाता है, जैसे एक मानव को साहस दिया जा रहा है। इन्हीं परमाणुओं को वह एकत्रित करता रहता है और एकत्रित करके उन परमाणुओं से यन्त्रों का निर्माण करता रहता है।

मेरे प्यारे! मुझे स्मरण आता रहता है सतोयुग के काल में त्रिभानु नामक एक राजा हुए हैं। त्रिभानु राजा के यहाँ ज्ञान और विज्ञान पराकाष्ठा पर था। ज्ञान और विज्ञान में उनके यहाँ एक त्रिरेणकेतु ऋषि थे और वह ऋषि राजा के पुरोहित थे और राजा के पुरोहित होने से वह उनको उल्लास देते रहते थे। उत्साहवर्द्धक वार्ता प्रकट करते रहते थे। उन्होंने कुछ समय के पश्चात् एक यन्त्रका निर्माण किया और वह यन्त्रक्या था? वह परमाणुओं को एकत्रित करने लगे, जिन परमाणुओं से उल्लास प्राप्त होता था। उत्साह मिलता था उन परमाणुओं को एकत्रित किया और उनसे शक्तिवाहन केतु यन्त्रों का निर्माण किया और जैसे एक मानव मानव को यन्त्रित किया जाता है वह यन्त्रस्थिर है, मुनिवरो! वह संग्राम में जाता है। उस यन्त्रकी सहायता प्राप्त हो रही है वह राजा अजेय कहलाता था। वह राजा किसी से विजित नहीं होता था।

इसी प्रकार इस वाणी का जो उद्गम है, वाणी का जो उद्गान है वह महत्वपूर्ण कहलाता है। वाणी अब अग्नि स्वरूप बन जाती है एक मानव अग्नि के स्वरूप को धारण कर लेता है तो मुझे स्मरण है बेटा! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब अध्ययन कराते रहते थे तो एक समय वह पचासी वर्ष तक मौन रहे, पचासी वर्ष का मौन धारण करके वह प्रभु का मनन और चिन्तन करते रहे। मनन करने के पश्चात् मौन की प्रतिक्रियाएं समाप्त हुई और उद्गान प्रारम्भ हुआ तो जो वाणी से उच्चारण करना, वही प्रियता में हो जाता है क्योंकि अग्नि का कार्य है दाह। वह जो दाह के कार्य थे उच्चारण करने मात्रसे वह सिद्ध हो जाते थे। मेरे प्यारे! इस वाणी के कारण पक्षीगण भी मौन हो जाते थे। जब वह उद्गान गाते थे, उद्गान प्रारम्भ होता था तो मुनिवरो! सिंहराज क्या, संसार की जितनी भी ध्वनि होती, वह

ध्वनि भी शांत हो जाती थी।

वाणी का शोधन

परिणाम क्या? यह उनकी वाणी की उद्गमता थी। उनकी वाणी में जो तेज और तप की प्रतिभा ओत-प्रोत थी वह उसमें आच्छादित हो जाती थी। विचार-विनिमय क्या? वाणी का विज्ञान, वाणी की अग्नि मानव के जीवन में स्वाभाविक पनपती रहती है। आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं जा रहा हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ यहाँ वाणी को शोधन करने के लिए ब्रह्मचर्यव्रत में जब बाल्य आचार्य के कुल में प्रवेश करता है तो सबसे प्रथम आचार्य कहता है हे बाल्य! हे ब्रह्मचारी! इस वाणी को मुझे प्रदान कर। इस वाणी में सुगन्धि होनी चाहिए। मेरे प्यारे वाणी में कैसे सुगन्धि होती है? तुम्हें यह प्रतीत होना चाहिए कि वाणी में सुगन्धि उन महापुरुषों के जीवन में होती है जो इस वाणी को मृत्यु से पार ले जाता है और मृत्यु से कौन पार ले जाता है? जो योगेश्वर होता है, साधक होता है, प्राणायाम करने वाला होता है क्योंकि वाणी को प्राण में ही तो लगाना है वायु में, अग्नि में, सर्वत्रता में प्राणी ओत-प्रोत हो रहा है। यह प्राण जब ओत-प्रोत हो जाता है, इसी के गर्भ में विद्यमान हो करके मृत्यु से पार हो जाते हैं।

देखो बेटा! याज्ञवल्क्य मुनि महाराज की सभा में अथर्वा ने यह कहा था, हे भगवन्! मृत्यु की मृत्यु क्या है? तो उस समय याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने यह कहा, हे अथर्वा! मत कहो संसार में मृत्यु की मृत्यु नहीं होती। मृत्यु की मृत्यु ब्रह्म है और ब्रह्म को जानने वाले की मृत्यु नहीं होती। इसीलिए जो ब्रह्म को जानता है, जो इस प्राण स्वरूप को जानता है, जिसका प्राण ही आयतन माना गया है वह मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। वह मृत्यु से पार हो जाता है।

तो विचार क्या? आज मैं इसके भौतिक विज्ञान में जाना नहीं चाहता हूँ। यह मैंने तुम्हें इसके आध्यात्मिक सन्दर्भ में बताया था। आज मैं तुम्हें एक आभा में ले गया कि मानव को आध्यात्मिकवादी बनना चाहिए। आज मैंने तुम्हें आध्यात्मिक भाव को प्रकट किया हैं कल मैं तुम्हें भौतिकवाद में ले जाऊंगा। देखो वाणी का जो स्वरूप है इसके भौतिकवाद की चर्चा तुम्हें कल प्रकट करूंगा। आज मैं तुम्हें आध्यात्मिक मृत्यु से लांघने की चर्चा कर रहा हूँ कि आध्यात्मिक एक इसका भाग है और आध्यात्मिक भाग का अभिप्राय क्या? मानव को आध्यात्मिकवादी बन करके मृत्यु से पार होना चाहिए। परन्तु जब मैं भौतिक विज्ञान में इस वाणी को ले जाता हूँ, इस वाणी के स्वरूप में हम प्रवेश करते हैं तो मेरे प्यारे! यह विज्ञान कितना आभा में रमण करने लगता है कि वैज्ञानिक वाणी के पूर्ण रूपेण स्वरूप को नहीं जान पाता। उसके मध्य में वह आभा में साकार हो जाता है।

मेरे प्यारे! कल मैं इसके भौतिक विज्ञान की आभा को प्रकट करूंगा। वाणी का स्वरूप ऐसा नहीं है जो मैं एकोकी रूपों में इसकी विवेचना कर सकूं अथवा इसका परिचय दे सकूं, वैज्ञानिकों के मध्य में जब इसका परिचय दिया जाता है तो इस वाणी का रथ बन जाता है और वाणी का रथ बन करके इस वाणी के द्वारा ही नाना प्रकार के अणु और परमाणुओं का निर्माण होता है। इन अणु और परमाणुओं के निर्माण के द्वारा ही यन्त्रों का निर्माण वैज्ञानिक करता है यन्त्रों का निर्माण हो करके ध्वनि से समन्वय करके ऐसे-ऐसे यन्त्रों का निर्माण होता है। जिससे राष्ट्र के राष्ट्र बेटा! अग्नि के मुख में प्रवेश कर जाते हैं।

तो मेरे पुत्रो! विचार-विनिमय क्या? मैं तुम्हें यह उच्चारण कर रहा था कि प्रत्येक मानव को आध्यात्मिकवादी बन करके इस वाणी को मृत्यु से पार ले जाना चाहिए। क्योंकि मृत्यु से पार ले जाना बहुत अनिवार्य है।

मेरे प्यारे! माता पार्वती और भगवान शिव का जो वाणी के ऊपर, भौतिक विज्ञान के ऊपर प्रायः अनुसन्धान होता रहा है, राजा रावण उनके मध्य में विद्यमान हो करके किस प्रकार इस वाणी के द्वारा अणुशक्ति को जाना

करते थे। यह बेटा! मैं कल तुम्हें प्रकट करूंगा। आज का वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हमें अपने जीवन को महान् बनाने के लिए, महापुरुषों की उन वार्ताओं को और मौन रह करके, अनुष्ठान करके प्राण में इसको रमण करा देता है और मनस्तत्व जब प्राण में प्रवेश कर जाते हैं तो एक ही प्रणव है जो प्रत्येक इन्द्रिय को मृत्यु से पार ले जाता है। आओ मेरे प्यारे! कल मैं तुम्हें वैज्ञानिक चर्चाएं प्रकट करूंगा कि इस वाणी के द्वारा कैसे विभक्त होते है परमाणु और अन्तरिक्ष में वैज्ञानिक उन्हें कैसे एकत्रित करते हैं। यह चर्चाएं बेटा! मैं कल तुम्हें सूक्ष्म रूपों से प्रकट करूंगा क्योंकि परिचय देना हमारा कर्त्तव्य है।

विचार-विनिमय चल रहा था कि इस वाणी को हम मृत्यु से पार ले जाना चाहते हैं तो मुनिवरो! वाणी से हिंसा का प्रारम्भ होता है वह अहिंसा में परिवर्तित होता है। समाधिस्थ के द्वारा योगेश्वर बनने से वह विचारार्थ अनुष्ठान हम अभ्यस्त होने वाले बने। मृगराज, सिंहराज, सर्पराज नाना प्राणी हमारे द्वारा जब किसी प्रकार की विडम्बना न रहेगी, मृत्यु का भय नहीं रहेगा, क्योंकि ज्ञान होगा तो अन्धकार नहीं रहेगा और जब अन्धकार नहीं रहेगा तो दिन और रात्रिनहीं होगी। दिन और रात्रिनहीं होगी तो आलस्य और प्रमाद भी नहीं होगा। जब आलस्य और प्रमाद नहीं होगा मेरे प्यारे! हम प्रभु के राष्ट्र में मृत्युंजय बन करके सदैव ज्ञान रूपी प्रकाश में रमण करने लगेंगे। यह है बेटा! आज का वाक्य। मुझे समय मिलेगा मैं तुम्हें वाणी का द्वितीय भाग कल प्रकट करूंगा। आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन होगा। दिनांक : 30-04-1980 स्थान : दुर्गयाना मन्दिर, अमृतसर।

४ चतुर्थ अध्याय वाणी का महत्व 01 05 1980

जीते रहो, देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भान्ति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्रवेद-वाणी में उस मेरे देव को विज्ञानमयी स्वरूप माना गया है, जो सर्वत्रब्रह्माण्ड का नियन्ता है अथवा निर्माण करने वाला हैं क्योंकि प्रत्येक वेद-मन्त्रउस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है, उसके गुणों का गुण-वादन कर रहा है। किसी भी मन्त्रके ऊपर जब विचार-विनिमय होने लगता है तो उसमें मेरे देव की अनुपमता निहित रहती है। जिस प्रकार माता का पुत्रमाता की गाथा गा रहा है। उसी प्रकार प्रत्येक वेद-मन्त्रउस ब्रह्म का वर्णन कर रहा है। वह उसकी आभा का वर्णन कर रहा है। आज का हमारा वेद-मन्त्रक्या कह रहा है। वह मेरा देव विज्ञानमय स्वरूप माना गया है जिनका विज्ञान आयतन माना गया है।

आज का वेद-मन्त्रकुछ विज्ञान की चर्चा कर रहा है, कुछ विज्ञान की वार्ताएं प्रकट कर रहा है। विज्ञान की उत्पत्ति का वर्णन कर रहा है प्रत्येक मानव को एक आकांक्षा लगी रहती है कि हम ज्ञान और विज्ञान में रमण करना चाहते हैं। प्रत्येक मानव यह चाहता है कि मैं वैज्ञानिक बनूं। प्रत्येक मानव चाहता है कि मैं सर्वत्रान और विज्ञान को सीमित करके अपने अन्तर्हृदय में स्थिर कर लूं। यह मानव के जीवन में कल्पना लगी ही रहती है। परन्तु जब वह वेद के समीप जाता है, क्योंकि वेद नाम ज्ञान को माना गया है। जितना भी ज्ञान है उस ज्ञान का सम्बन्ध मानव की अन्तरात्मा से होता है। तो जितना भी ज्ञान है जो हृदय-ग्राही है वह सर्वत्रब्रह्माण्ड में ओत-प्रोत है। चाहे वह पृथ्वी मण्डल का प्राणी हो, चाहे वह मंगल का प्राणी क्यों न हो, किसी भी लोक-लोकान्तरों में तुम प्रवेश करोगे तो वहाँ ज्ञान और विज्ञान तुम्हें दृष्टिपात आएगा।

ब्रह्मचारी सुकेता की अन्तरिक्ष यात्रा

मुझे वह काल स्मरण है जब ब्रह्मचारी सुकेता अपने यान में विद्यमान हो करके अन्तरिक्ष यात्रा करने चले। यहाँ से जब उन्होंने उड़ान उड़ी तो वह सबसे प्रथम चन्द्रमा में पहुंचे। चन्द्रमा से उड़ान उड़ करके बृहस्पति में पहुंचे। जब बृहस्पति से अपनी उड़ान उड़ी तो बुध में जा पहुंचे। बुध से उड़ान उड़ी तो वह मंगल में जा पहुंचे, मंगल से उड़ान उड़ी तो शुक्र में जा पहुंचे। शुक्र से उड़ान उड़ी तो वह श्वेतकेतु मण्डल में जा पहुंचे। परन्तु इन लोकों की उड़ान उड़ने के पश्चात् वह बहत्तर मण्डलों का भ्रमण करके अपने यान के सहित महर्षि भारद्वाज के द्वार पर जा पहुंचे। तब भारद्वाज मुनि ने कहा कहो ब्रह्मचारी सुकेता गार्गे! तुमने क्या दृष्टिपात किया। तो विचार चल रहा था मन्त्रयह कह रहा था 'विज्ञानाम् तत्काम देवः प्रवेहः ग्रहणा स्वस्तम् ब्रही विस्वस्तम् व्यापकम् देवः' वेद का मन्त्रदोनों आचार्यों के मध्य में यह कह रहा था कि यह ज्ञान व्यापक है यह ज्ञान और विज्ञान सर्वत्रब्रह्माण्ड का एक मूलक है। तो ब्रह्मचारी सुकेता ने यह कहा कि महाराज! मैं जिस भी मण्डल में पहुंचा हूँ उसी मण्डल में विज्ञान एक व्यापकवाद में रमण कर रहा है। वह किसी की सम्पदा नहीं रहती, क्योंकि ज्ञान ईश्वरीय है उसका अन्तरात्मा से समन्वय रहता है। चेतना और जड़ जगत् दोनों की विवेचना कर रहा है परन्तु किसी भी काल में उसका हृस नहीं होता।

तो मेरे प्यारे! विचार क्या? प्रत्येक वेद-मन्त्रहमें यह निर्णय कराता है कि उस परमपिता परमात्मा का यह ज्ञान और विज्ञान है वह अनन्त है, उसकी कोई सीमा नहीं, कोई भी मानव सृष्टि के प्रारम्भ से वर्तमान के काल तक ऐसा वैज्ञानिक नहीं हुआ, कोई ऐसा ज्ञानी नहीं हुआ जो परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध

करने वाला हो क्योंकि उसका समन्वय व्यापक है, विभु के रूप में रमण करने वाला है। तो आओ मेरे प्यारे! मैं कुछ वार्ता प्रकट कर रहा था। आज मैं तुम्हें उन्हीं शब्दों पर ले जाने के लिए आया हूँ जो हमारा पक्ष चल रहा था। आज हम आध्यात्मिकवादी बनना चाहते हैं और भौतिक विज्ञानवेत्ता भी बनना चाहते हैं। संसार में कोई प्राणी ऐसा नहीं है जिसकी अपनी कोई उड़ान न हो। क्योंकि मनस्तत्व तो कार्य करता ही रहता है। ज्यों-ज्यों प्राण के संसर्ग में आता है त्यों-त्यों वह ज्ञान के क्षेत्रमें चला जाता है और जब यह मन प्राण से विभक्त हो जाता है इसमें अज्ञान छा जाता है। इसीलिए हमारे यहाँ ऋषि-मुनियों ने अनुसन्धान किया और कुछ दृष्टिपात भी आता है।

प्राण

हमारे मानव शरीर में दस प्राण कहलाते हैं, प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान, यह प्राण हैं और पाँच उप-प्राण कहलाते हैं-नाग, देवदत्त, धनंजय, कृकल, कूर्म। जैसे यह मानव शरीर में कार्य कर रहे हैं वैसे ही दस प्राण इस ब्रह्माण्ड में गति कर रहे हैं, इसी प्रकार यह ब्रह्माण्ड में कार्य कर रहे हैं, विभक्त, क्रिया चल रही है। क्योंकि प्राण दस रूपों में ही अपनी आभा को प्रकट कर सकता है। दस प्राणों से ही गणना की उत्पत्ति होती है। जितनी भी गणना है अर्थात् दस से आगे कोई विभक्त क्रिया नहीं होती। तो इसी के रूप में हम इकाई की आभा में रहते हैं और इन्हीं दसों प्राणों के आधार पर कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष बनता है। एक माह में दो पक्ष होते हैं। इसी प्रकार इन दस प्राणों के आधार पर सम्वत्सर बनता है और इसी प्राणों के आधार पर सम्वतसर के होते हुए अहोरात्रबनता है। अहोरात्रके बन जाने से मनु बनता है और मनु के बनने से सृष्टि का क्रम मानव के समीप आ जाता है। तो मेरे पुत्रो! इस विषय पर अपनी विशेष विवेचना नहीं करना चाहता। केवल तुम्हें परिचय देने चला आता हूँ क्योंकि परिचय देना ही हमारा कर्त्तव्य है। देखो पुत्रो! इन्हीं इस प्राणों में जितना भी परमाणुवाद है वह गति कर रहा है।

मेरे प्यारे! देखो त्रिकोण में यह विज्ञान गति कर रहा है। हमारे आचार्यों ने विज्ञान का कोई मूल नहीं माना है। विज्ञान के ऊपर अध्ययन किया हैं, बहुत अध्ययन किया और अध्ययन करके, उसको समेट करके अपने अन्तर्हृदय में स्थिर कर लिया। क्योंकि विज्ञान का बाह्य रूप बन जाने से अज्ञानता बलवती हो जाती है क्योंकि मानव के जीवन का जितना विस्तार बनता चला जाएगा उतना ही वह प्रकृतिवाद में, जड़ता के आंगन में रमण कर जाएगा और जितना ही यह अपने विचारों को संकुचित बना देता है, आंकुचन क्रिया में लाता है, संसार को समेट करके अपने अन्तर्हृदय में स्थिर कर लेता है उतना ही उसे आत्मज्ञान की उपलब्धि होने लगती है। मानव जितना वाणी से मौन रहता है, जितना वाणी से अन्तर्मुखी चिन्तन करता है उतना ही उसके अन्तर्हृदय में प्रकाश होता है और जितना वह इस वाणी के द्वारा बाह्य जगत में प्रवेश करता है बाह्य जगत् में अपनी कामना को बलवती बना लेता है उतना ही इस वाणी का विस्तार बन जाता है और वाणी में रजोगुण, तमोगुण छा जाता है और सतोगुण भी छा जाता है। परन्तु देखो जितना भी सतोगुण है वह सर्वत्रमित्रशक्ति कहलाती है और जितना भी कटु शब्द है वह वरुण शक्ति कहलाती है। तो मित्रशक्ति और वरुण शक्ति का मिलान होने से अमृत की उत्पत्ति होती है। अमृत की उत्पत्ति कैसे होती है? वरुण शक्ति और मित्रशक्ति दोनों का मिलान, दोनों का समन्वय हो करके जितनी भी वनस्पतियां हैं अथवा जितना भी जल है, अग्नि में आभा है, अमृत है यह दोनों के समन्वय से है। तो आज मैं बेटा! क्या उच्चारण कर रहा हूँ तुम्हारे समीप कि मित्रशक्ति प्राण हैं और वरुण शक्ति मनस्तत्व माना गया है। मैं इस सम्बन्ध में कोई विशेषता अथवा विवेचना नहीं देने आया हूँ।

पंच स्वादन

विचार क्या? मेरे प्यारे! देखो 'वृण प्रामाणवसुते देवाः' ऐसा वेद का ऋषि कहता है, आचार्य कह रहा है।

वाणी में पाँच प्रकार के स्वादन होते हैं पाँच प्रकार के जो स्वादन हैं उन पाँचों प्रकार का क्योंकि पंचीकरण कहलाया गया जहाँ तृतीय वाद है वहाँ पंचीकरण भी है। पंचीकरण क्या है प्रकृति की पाँच प्रकार की गतियां मानी गयी हैं। सबसे प्रथम प्रसारण है, गति है, ध्रुवा, ऊर्ध्वा और आकुंचन यह पाँच प्रकार की गतियां हैं प्रकृति की और पाँचों ही यह रस कहलाते हैं जो रसना के अग्र भाग में कुछ छिद्र होते हैं। छिद्रों से उनका समन्वय होता है। अब मुनिवरो! देखो वह जो पाँचों प्रकार के रस हैं वह सामान्यता से परिणत किए जाते हैं तो रसना में मधुरता आ जाती है और यदि और भी विशेष उनमें प्रकृति के स्वादन होते हैं उतने ही मानव की प्रवृत्ति में भेदन आ जाते हैं।

मेरे प्यारे! मुझे स्मरण है एक समय महर्षि उद्दालक गोत्रमें जन्म लेने वाले महर्षि श्वेतकेतु भयंकर वन में कुछ अनुष्ठान कर रहे थे। वह अनुष्ठान क्या था? वह कुछ अन्न को लेते, जल में उसका शोधन करके उसे पान करते थे। एक समय कुछ जिज्ञासु उनके समीप पहुंचे। जिज्ञासुओं ने कहा कि महाराज! यह क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा कि मैं कुछ प्राण की रक्षा के लिए आहार कर रहा हूँ। मेरे प्यारे! जितना भी आहार हम प्रकृति और शरीर के आधारित हो करके पान करेंगे जीवन-शक्ति के लिए, उतना हमारे जीवन का उत्थान होगा, जीवन की प्रतिक्रिया ऊँची बनेगी और जितना हम रजोगुणी, तमोगुणी पदार्थों को पान करेंगे, जैसे दूसरों के रक्त को पान करना है, हम अपनी रसना का आस्वादन बनाने के लिए दूसरों के रसों का पान करते हैं, उसमें तमोगुणता आ जाती है। वह तमोगुणता आ करके मानव की प्रकृति को भिन्न बना देती है और उसमें जब मुनिवरो! रजोगुण आता है, तमोगुण आता है, क्रोध की वासना बलवती बन जाती है, क्रोध के अति आने से सामान्यता में न रह करके बाह्य-जगत् में प्रवेश करके जब क्रोध आता है तो मानव के शरीर में एक नाग नाम का प्राण है, वह जो नाग नाम का प्राण है वह मानव के अमृत को निगलता रहता है और विष को उगलता रहता है। मानव नाना प्रकार के अवगुणों से पीड़ित हो जाता है। आज मैं बेटा! आयुर्वेद में नहीं जा रहा हूँ। अश्विनी कुमार वैद्यराज क्या कहते हैं अथवा रावण के राष्ट्र में जो सुधन्वा नामक वैद्यराज थे वह इस सम्बन्ध में क्या कहते हैं? इस सम्बन्ध में कोई विवेचना नही करने आया हूँ। विचार केवल क्या? वह जो नाग प्राण है उसका ऊर्ध्वामुख बन जाता है और ऊर्ध्वामुख बन करके अमृत को निगल जाता है।

मिथ्यापन का वायुमंडल पर प्रभाव

देखो, वैद्यराजों का ऐसा कथन है, जब अश्विनी कुमारों से राजा रावण के राष्ट्र में महर्षि कुकुट मुनि महाराज ने यह कहा, कि महाराज! यह क्रोध क्या है? तो अश्विनी कुमार, महात्मा भुजु के पुत्रने कहा कि क्रोध करने से मानव की आयु क्षीण हो जाती हैं। क्रोध विशेष होने से मानव का अमृत विष बन करके, वह वरुण-शक्ति बन करके अन्तरिक्ष में रमण करने लगता है। वही वरुण-शक्ति वह जो क्रोधाग्नि उत्पन्न हो गयी है, रजोगुण, तमोगुण उत्पन्न हो गया है, प्रसारण-क्रिया विशेष बलवती बन गई है, अन्तरिक्ष में वे परमाणु छा जाते हैं और वे परमाणु क्या करते हैं। जब मानव मिथ्यावादी बनता है, मिथ्या उच्चारण क्यों करता है? क्योंकि उसका आहार और व्यवहार मिथ्या बन गया है। इसीलिए वाणी में भी मिथ्यापन आ गया है। मिथ्या पदार्थों पर अपने जीवन को निर्धारित बना लिया है, इसलिए वाणी में मिथ्यापन आ गया है। मिथ्यापन की इच्छा पूर्ण नहीं होती तो क्रोध आता है। क्रोध बलवती बन करके वह परमाणु अन्तरिक्ष में छा आते हैं, अन्तरिक्ष में छाने के पश्चात् अन्तरिक्ष दूषित हो जाता है। तुम्हें यह प्रतीत होगा जिस गृह में एक-दूसरे से प्रसन्न हो वरुण-शक्ति और मित्रशक्ति दोनों का मेल होता रहेगा, समन्वय होता रहेगा, वह गृह स्वर्ग है और जहाँ एक प्राणी दूसरे प्राणी से सन्तुष्ट नहीं है, क्रोधातुर हो रहा है, सम्पत्ति नहीं है वह गृह नारकीय बन जाता है, क्यों बन जाता है? क्योंकि उसमें क्रोध के परमाणु, स्वार्थ के परमाणु मिथ्यावादी तत्त्वों में बलवती हो गये हैं। इसलिए महापुरुष कहते हैं, यह गृह तो अशुद्ध हो गया है। मेरे

प्यारे! ऋषिमुनि यह कहते हैं कि मिथ्या न उच्चारण करो।

विचार-विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें कुछ वैज्ञानिक चर्चा करूंगा। मुनिवरो! देखो, इन्हीं शब्दों को ले करके एक उल्लास में कहता है किसी पर कोई मानव आक्रमण कर रहा है। वह कह रहा है, आ जाओ, मैं तुम्हारी शक्ति को बलवती बना रहा हूँ। देखो मैं आ रहा हूँ, तो वह मानव साहसी बन जाता है। विलासिता को त्याग करके वह अपनी अहं भावना में परिणत हो जाता है, वह जीवन की रक्षा कर लेता हैं परिणाम क्या? मुनिवरो! वह मानव जब अग्रणी बनता है, अग्रणी श्रुति होता है, श्रुति का जब मानव पठन-पाठन करता है तो उसकी आभा महान् बन जाती है। मुनिवरो! देखो, इन्हीं शब्दों को ले करके वैज्ञानिकों ने कुछ यन्त्रों का निर्माण किया। क्योंकि वह क्रोधाग्नि, रजोगुणी, तमोगुणी शब्द अन्तरिक्ष में ओत-प्रोत हो जाते हैं। अन्तरिक्ष में जैसे यह भूः-लोक है, भुवः लोक है, स्वः-लोक हैं स्वः-लोक को द्यौ लोक कहते हैं भुवः-लोक को अन्तरिक्ष कहते हैं और इसी प्रकार जब यह द्यौ मण्डल तक क्रोधातुर नहीं होते। वह केवल अन्तरिक्ष में ओत-प्रोत हो जाते हैं। उन शब्दों के कारण कर्मों की विचारधारा बनती है, क्योंकि उसी की तरंगें अन्तरिक्ष में प्रवेश करती हैं उसी से प्रकृति का वायु मण्डल परिवर्तित हो जाता है। वायुमण्डल कैसे परिवर्तित होता है? जैसे मानव के गृह का परिवर्तन हो जाता है। कलह रहने से गृह नारकीय बन जाता है उसका परिवर्तन हो जाता है। ऐसे ही अन्तरिक्ष में शब्दों की स्थिरता हो करके मिथ्यावादी राष्ट्रीय पद्धति विचित्रमय होने से वायुमण्डल बन जाता है, वायुमण्डल की आभाएं क्योंकि तरंगों से ही तो वायुमण्डल बनता है उसी से अतिवृष्टि, उसी से अनावृष्टि, उसी से मानव भोगों का भोगी बन जाता है।

आज मैं तुम्हें कहाँ ले गया हूँ, पुत्रो! विशेष वाक्य तो मैंने बहुत कुछ उच्चारण कर दिये परन्तु अब मैं तुम्हें वहाँ ले जाना चाहता हूँ जहाँ ऋषि -मुनि विज्ञान की अपनी उड़ान उड़ते रहते थे। यह सब विज्ञान की उड़ान है। ऋषियों के यह विचार कि हे मानव! तू मिथ्या न उच्चारण कर। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज और महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज उनकी माता यही तो कहा करती थी हे पुत्र! तू महान् बन तू मिथ्यावादी न बन। जो माता अपने में अपने को समाहित कर लेती है वह गृह को ऊंचा बना देती है, पवित्रबना देती हैं तो मुनिवरो! देखो, आज मैं तुम्हें कैलाश पर्वत पर ले जाना चाहता हूँ। कैलाश पर्वत पर राजा रावण और भगवान् शिव एक स्थली पर विद्यमान हो करके कुछ विचार-विनिमय कर रहे थे। कुछ विचारों का भेदन चल रहा था। राजा रावण के समीप एक मन्त्रआया। भगवान् शिव से उन्होंने उच्चारण किया कि महाराज! यह जो शब्द है, शब्दावली है, वाणी का जो रस है, जो अन्तरिक्ष में ओत-प्रोत हो जाता है इससे हम परमाणुओं को जानना चाहते हैं। मेरे प्यारे! जहाँ शिव वैज्ञानिक थे वहाँ माता पार्वती भी वैज्ञानिक थीं। देखो, वह दोनों विचार-विनिमय करते हुए बोले कि हम इन परमाणुओं का ही तो विभाजन करते हैं, परमाणुओं से ही तो हम नाना प्रकार के अणु महाणु, त्रिसरेणु महात्रिसरेणु की उत्पत्ति और इनका समन्वय करते हैं। जब यह नाग प्राण हमारे शरीर में क्रोधित होता है तो हमारे शरीर में नाना प्रकार की विभक्त क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। जैसे क्रोध के आने पर मानव शरीर में कम्पायमानता हो जाती है। इसी प्रकार जब यह बाह्य जगत् में अणुवाद परमाणुवाद गर्वित होता है, अनुशासन करता है उस समय इसमें नाना प्रकार की क्रांतियां आ जाती हैं। क्रांतियां आ करके वह एक-दूसरे परमाणुओं को नष्ट करने लगते हैं, एक-दूसरे परमाणुओं को निगलने लगते हैं कैसे? जैसे हमारे मानव शरीर में नाग प्राण अमृत को निगल जाता है अमृत को निष्प्रदर बना देता है और विष की विस्फोटकता होने लगती है, विष की विभक्त क्रिया होने लगती है और वही विष मानव के शरीर में बलवती होने पर मानव के रुग्ण का कारण बनता चला जाता है। इसी प्रकार यह जो वायुमण्डल है इस वायुमण्डल में नाना प्रकार के परमाणु आदान-प्रदान हो रहे हैं। आदान-प्रदानता चल रही है। वैज्ञानिकों ने इसके ऊपर अनुसन्धान किया और अनुसन्धान करते हुए उन परमाणुओं को उन्होंने एकत्रित करना प्रारम्भ किया, जिन

परमाणुओं से अमृत का विष बन रहा था। अमृत का विष बन करके और सुन्दर परमाणुओं को वह निगलते हुए उन्हें वह अपने यन्त्रों में दृष्टिपात आने लगे। उन्होंने एक यन्त्रका निर्माण किया। यन्त्रों का निर्माण कैसे होता है? जैसे एक मानव परमाणुओं को दृष्टिपात् कर रहा है अपनी सूक्ष्म दृष्टि से सूक्ष्म परमाणुओं को एकत्रित करता हुआ अन्तरिक्ष में उसका एक यन्त्रबनाता है, यन्त्रों का निर्माण करता है। निर्माण करके उससे परमाणुओं को दृष्टिपात् करता है, लोकों को दृष्टिपात करने लगता है। जब वह दृष्टिपात करने लगता है तो उन्हीं यन्त्रों में वह परमाणु लेने प्रारम्भ करता है। वह परमाणु लेता हुआ, जैसे एक मानव शब्दों का उच्चारण कर रहा है, शब्दों का चित्रभी उसके साथ में है। वही शब्द और चित्रअन्तरिक्ष में गति करता है। यह जो शब्द है, वाणी है यह विद्युत की तरंगें होती है। जो शब्दों का विभाजन कर देती हैं। शब्दों की विभक्त क्रिया पुनः चल रही है, वही मानव दर्शनों की भाषा में वाक्य उच्चारण कर रहा है, वही मानव देखो, अदर्शनों में जा रहा है वही मानव क्रोध में जा रहा है। वही कुछ शब्द अन्तरिक्ष में रमण करते हैं कुछ द्यौ में रमण करते हैं। वहीं कुछ शब्द होते हैं वह द्यौ-मण्डल में प्रवेश करके सूर्य लोकों में, प्रकाश में रमण करते रहते हैं।

वाणी का माधुर्य

आज में बेटा! तुम्हें शिव विज्ञान की चर्चाओं में नहीं ले जा रहा हूँ, केवल विचार यह कि यह जो शब्द है, यह जो वाणी है, इस वाणी से हमें कितना मधुर बनना है, वाणी के ऊपर अनुशासन करना हैं इस वाणी के द्वारा सूक्ष्म अणुओं की उत्पत्ति होती है और वह जब अग्नि की तरंगों पर विद्यमान होते हैं तो इन समूह शब्दों का रस भी बन जाता है, उस रस की धाराएं वायुमण्डल में प्रवेश कर जाती हैं। तो विचार-विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें यह विचार दे रहा हूँ, विज्ञान का जो पक्ष है शब्दों का, वह क्या है? मुनिवरो देखो! राजा रावण और भगवान शिव अपनी स्थली पर विराजमान थें रावण ने कहा, महाराज! मैं यन्त्रका निर्माण चाहता हूँ और मैं यह चाहता हूँ मेरा यन्त्र मुझे शक्ति प्रदान करे। मैं मित्र-शक्ति को चाहता हूँ और वरुण-शक्ति की इसमें मूढ़ता चाहता हूँ। राजा रावण, भगवान शिव और देखो, महर्षि मार्कण्डेय मुनि महाराज जो महान् वैज्ञानिक थे, बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है, जब यह तीनों बुद्धिमान वैज्ञानिक अपनी स्थली पर विद्यमान हो गये। विद्यमान हो जाने के पश्चात् उन्होंने यह विचारा कि वेद कहता है शब्द मानव को साहसी बना देता है, शब्द मानव को उल्लास देता है, उसी उल्लास के आधार पर उन्होंने एक यन्त्रका निर्माण किया। जो उल्लास शब्द वाणी से चल रहा था उन परमाणुओं को उन्होंने एकत्रित किया और वह कैसे किया? उन्होंने याग प्रारम्भ किया और जब याग प्रारम्भ किया, नाना प्रकार के शाकल्यों को लिया। नाना वनस्पतियों को ले करके अग्नि में आहुति देने लगे, घृत के द्वारा देने लगे। कामधेनु गऊ के द्वारा भी जब बेटा! वह याग करने लगे तो सूक्ष्म परमाणु बन करके वायुमण्डल में प्रवेश कर रहे थे। और उनके शब्द भी प्रवेश कर रहे थे। उन्होंने एक चक्षुवाहिनी करमोवाणीक यन्त्रका निर्माण किया। तरंगे अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके जो अन्तरिक्ष में रमण कर रही थीं उनको वह यन्त्रों से दृष्टिपात करने लगे। वे देवतागण जब देवत्व को प्राप्त होने लगे, जब अग्नि, अग्नि का भाग अपने में निगल रही थी और वायु का भाग वायु अपने में निगल रही थी और पृथ्वी अपने भाग को अपने में निगल रही थी। जल अपने भाग को अपने में शोषण कर रहा था। यज्ञशाला में जो तरंगे उत्पन्न हो रही थीं वह तरंगें पजीकरणमय कहलाती हैं। वह पचीकरण वाली तरंगे अपने-अपने भागों में परिणत हो रही थीं और वह जो यज्ञमान था उसका रथ बन करके, इन पचीकरण को पार करके द्यौ-लोक को आ रहा था। तो जब राजा रावण, भगवान शिव और महर्षि मार्कण्डेय मुनि महाराज को यह दृष्टिपात होने लगी, उनके जीवन में एक महान् क्रान्ति उत्पन्न होने लगे और क्रान्ति आ जाने से उन शब्दों को उन्होंने एकत्रित करना प्रारम्भ किया और अपनी आभा में लाने का उन्होंने शक्तिवाहिनी नामक यन्त्रका निर्माण किया और

वह यन्त्रकैसे बन गया? जिस नामीकरण पर वह यन्त्रथा मुनिवरो! देखो यन्त्रविद्यमान है, संग्राम चल रहा है परन्तु उस मानव को कोई विजय नहीं कर सकता। ऐसे यन्त्रों का निर्माण वैज्ञानिकों ने उन प्राणांगों को जाना है। परन्तु यह शब्द साहसी बना और वही शब्द क्रोधातुर हो करके, क्रोध में परिणत, हो करके, वही शब्द अपनी सीमा से बाह्य हो करके उन परमाणुओं को वैज्ञानिकों ने एकत्रित करना आरम्भ किया, नाग प्राण काले परमाणुओं को एकत्रित करने से उससे अणु शक्ति की उत्पत्ति हो गई। अणु-शक्ति की उत्पत्ति कहाँ से हुई? क्योंकि अग्नि की तरंगों में ही विद्यमान हो करके शब्द और परमाणु गति कर रहा है।

ऋषियों का शब्द-अनुसंधान

पुत्रो! तुम्हें प्रतीत है मैंने बहुत पुरातन काल में कहा था महर्षि मार्कण्डेय ऋषि महाराज ने, महर्षि सोमभुक ऋषि ने, त्रेतकेतु ऋषि ने एक यन्त्रका निर्माण किया था सतोयुग के काल में, वह तुम्हें प्रतीत होगा। उस यन्त्रमें यह विशेषता दृष्टिपात हो रही थी जैसे माता के गर्भस्थल में एक बिन्दु का प्रवेश होता है, उसी एक बिन्दु से मानव के शरीर की रचना होती है, इसी प्रकार का बिन्दु कण-कण हो करके जब अन्तरिक्ष में गति करने लगा तो जब उसे यन्त्रों से दृष्टिपात किया गया तो वही उतने आकार में बिन्दु के परमाणु तरंगे दृष्टिपात हो रही थीं, जितने परमाणुओं से माता के गर्भस्थल में बालक का निर्माण होता है। वहीं परमाणु उन्होंने यन्त्रमें लिये और यन्त्रों में मुनिवरो! शब्द को दृष्टिपात किया, अब जो जिस मानव का शब्द है, जितने आकार का वह शब्द है उतने आकार के परमाणु गति करते हुए अन्तरिक्ष में जाते हुए द्यौ-लोक में प्रवेश होते दृष्टिपात होने लगे। विचार क्या? शब्दों के साथ में उस मानव का आकार और चित्रबन करके वह द्यौ-लोक में, अन्तरिक्ष में और सृष्टि लोकों में ओत-प्रोत हो जाता है। विचार-विनिमय क्या? वैज्ञानिकों ने इन शब्दों के ऊपर ही अनुसन्धान करते हुए नाना प्रकार की प्रतिक्रियाओं को जाना है। मैं भारद्वाज मुनि की विज्ञानशाला में तुम्हें नहीं ले गया। परन्तु मैंने केवल पुरातन काल के ऋषि मुनियों की चर्चाएं की जिन्होंने बहुत अनुसन्धान किया। अनुसन्धान करने से एक-एक वेदमन्त्रमें संसार का ज्ञान और विज्ञान दृष्टिपात् आता रहता है और जब मैं वेद की आभाओं पर रमण करने लगता हूँ यही शब्द जो आध्यात्मिकवाद में मृत्यु से मानव को पार ले जाता है। यही शब्द है जो मौन रह करके ऋषि-मुनियों ने विज्ञान की तरंगों को जान करके आध्यात्मिकवाद में उन्होंने प्रवेश किया है।

आओ मेरे प्यारे! मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ। केवल परिचय देने आया हूँ और परिचय क्या है? मानव को प्रत्येक शब्द को विचारना चाहिए। प्रत्येक शब्द को उच्चारण करने से पूर्व उसका मन्थन कर लेना चाहिए। विचार क्या? मुनिवरो देखो मानव मौन रहते हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव 171 वर्षों तक मौन रहे हैं और मौन रह करके उन्होंने वाणी के ऊपर अनुसन्धान किया। चक्षुओं को मौन बना लिया। कोई कल्पना नहीं करने का नाम मौन है। विचार क्या है? वेद की आध्यात्मिकता यही तो कहती है, हे मानव! तू अपनी आभा को जानने का सदैव प्रयास कर। जब मैंने पुरातन वेद भाष्य की भूमिका बनाई तो दस प्राणों के ऊपर विवेचना चल रही थी। जब प्राण से वाणी का समन्वय हो जाता है उस समय यह वाणी मृत्यु को लांघ जाती है। मृत्यु से पार हो जाती है। जब तक हम मित्रशक्ति से अपना समन्वय नहीं करते, मित्रशक्ति को हम क्रिया में नहीं लाते तब तक मानव मृत्यु से पार नहीं होता। ऋषि-मुनियों में यही तो विशेषता है, ऋषि-मुनियों ने एक-एक इन्द्रिय के ज्ञान और विज्ञान को और उसके रहस्य को जान करके और उसकी व्यापकता में रमण करा करके, उसे एकोकी आसन पर विद्यमान करके मृत्यु से उलांघा है, मृत्यु से पार किया हैं। तो इसीलिए मृत्यु से पार होने के लिए इस वाणी को जैसे चक्षु को मृत्यु से पार किया, ऐसे ही आचार्यजनों ने, ऋषियों-मुनियों ने, वेद के पठन-पाठन करने वालों ने जब इन्द्रिय के स्वरूप को जान लिया कि इससे तो विज्ञान अणुवाद की उत्पत्ति होती है

इसको त्यागो। यह तुम्हारे ही कार्य में आएगा। जैसे मुनिवरो! जब राष्ट्र में स्वार्थपरता आ जाती है तो विज्ञान का बाह्य जगत् बन जाती है और विज्ञान के बाह्य जगत् बन जाने से विज्ञान का दुरुपयोग होने लगता है, विज्ञान का दुरुपयोग होने से अज्ञानता छा जाती है, अज्ञानता छा जाने से मानव कर्त्तव्य से गिर जाता है राष्ट्र में रक्तभरी क्रांति आ जाती है।

मेरे प्यारे! विचार-विनिमय क्या? राष्ट्र तो एक कर्त्तव्यवाद की पूंजी है। जब राष्ट्र में स्वार्थपरता आ जाती है, राष्ट्र निर्माण की आवश्यकता अध्यात्मवेत्ताओं को नहीं होती। राष्ट्र तो केवल कर्त्तव्यवाद की एक पूंजी है, कर्त्तव्यवाद में समाज को लाने के लिए है। राष्ट्र क्रांति के लिए नहीं होता है, राष्ट्र रक्तमयी क्रांति के लिए नहीं हुआ करता इसीलिए प्रत्येक ऋषि कहता है, आचार्यो ने कहा है स्वार्थपरता को त्यागने का नाम मृत्यु से पार होना है। वाणी में जब स्वार्थपरता आ जाती है, वाणी मृत्यु से आच्छादित रहती है। जब यह वाणी स्वार्थहीन अपने वाक्यों को प्रकट करती है, यह मृत्यु से पार हो जाती है। आओ मेरे प्यारे! आज का यह विचार देता हुआ मैं दूरी न चला जाऊं। यह तो ज्ञान और विज्ञान का वन है। विचार-विनिमय क्या? मानव नाना प्रकार के यन्त्रों का निर्माण कर सकता है, करता रहा है परम्परागतों से ही। यह कोई नवीन वाक्य नहीं है। यह विज्ञान की चर्चाएं हैं, पुरातन काल की। विज्ञान तो मानव का मौलिक गुण है। सूक्ष्म अंकुर मानव के मस्तिष्क में विद्यमान हैं। उन सूक्ष्म अंकुरों का जब भी प्रादुर्भाव होने लगता है उसी काल से मानव का जीवन व्यापक और आभामयी बन जाता है।

यह वाक्य बेटा! आज का हमारा अब समाप्त हो गया हैं कल मुझे समय मिलेगा तो मैं घ्राण के ऊपर परिचय दूंगा। यह घ्राण को कैसे मृत्यु से पार किया जाता है, घ्राण से कैसे हम वैज्ञानिक बनते हैं? आध्यात्मिकवादी कैसे बनते हैं, मृत्यु को पार कैसे किया जाता है? यह चर्चाएं मैं कल प्रकट करूंगा। आज का वाक्य अब समाप्त हो गया है। आज मैंने वाणी का विज्ञानमयी पक्ष तुम्हें उच्चारण किया। इस वाणी के ऊपर मैं विस्तृत व्याख्या नहीं कर पाया। परन्तु संक्षिप्त परिचय दिया है समय मिलेगा कल घ्राण के ऊपर मानव कैसे विज्ञानमयी उड़ान उड़ता है, कैसे आध्यात्मिकवादी बनता है यह प्राण में ही ईश्वर है। प्राणों से यह कैसे बनता है? यह चर्चाएं बेटा! मैं कल प्रकट करूंगा। आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन होगा।01 05 1980, स्थान : दुर्गयाना मन्दिर, अमृतसर

५ पंचम अध्याय प्राणों का महत्व-1 02 05 1980

जीते रहो! देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भान्ति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्रवेद-वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वह मेरा देव वरणीय है। जो भी संसार में उस देव को अपना वरुण बना लेता है अथवा उसे वर लेता है वह प्रायः उसी को प्राप्त हो जाता है।

आज का हमारा वाक्य यह क्या कह रहा है कि हम परमपिता परमात्मा को अपना वरणीय अथवा उसे वरने वाले बनें। अपने में ही उसे दृष्टिपात करते रहें, जिससे बेटा! सर्वत्रब्रह्माण्ड का जितना भी यह ज्ञान है अथवा विज्ञान है यह मानव की अन्तरात्मा में ही दृष्टिपात आने लगे और बिना उसको जाने हम विज्ञान में भी प्रामाणिकता को प्राप्त नहीं होते। संसार का कोई भी वैज्ञानिक हो यदि वह चेतना का सहारा लेता है तो ही वह विज्ञान में सफलता को प्राप्त होता है और जो सहारा नहीं ले करके केवल एकाकी रमण करता है वह विज्ञान को तो प्राप्त कर सकता है परन्तु विज्ञान में वह सफल नहीं हो सकता।

चैतन्यता का प्रभाव

बहुत पुरातन काल की वार्ता है, एक समय उद्दालक गोत्रके ऋषि श्वेतकेतु अपने आश्रम में विद्यमान थे, वेद का अध्ययन कर रहे थे। विभक्तक्रिया अर्थात् विभाजन इन दोनों पर रमण करने लगे। दोनों के ऊपर अनुसन्धान करने लगे। तो वह ईश्वर से विमुक्त होने लगे। उन्हें एक क्रिया दृष्टिपात आने लगी जो संसार का विभाजन कर रही थी। जो परमाणुओं का अणुओं का विभाजन कर रही थी, परन्तु उन्हें एक सूत्रऐसा दृष्टिपात हुआ वह जो सूत्रउनमें दृष्टिगत होने लगा, अब विचारने लगे कि वह चेतना जो मुझे ''ज्ञानाः ब्रह्मणे वृतः देवाः'' वृतों का पति है वह मुझे दृष्टि में नहीं आ रहा है। श्वेतकेतु को बारह वर्ष हो गए, बारह वर्षो तक अनुसन्धान और कुछ अनुष्ठान भी चलता रहा परन्तु अन्तिम परिणाम पर वह नहीं पहुंच पाए, विज्ञान के आश्रित हो गए, विज्ञान में अधूरापन आ गया।

एक समय उनके द्वारा महर्षि मुद्गल पहुंचे और मुद्गल ऋषि ने कहा, कहो श्वेतकेतु, कैसे विद्यमान हो? ऋषि ने कहा कि प्रभु! मैं विज्ञान को जान रहा हूँ। ये तरंगे मुझे स्मरण आती रहती हैं, मैं विज्ञान में सफल नहीं हो रहा हूँ। मृद्गल ऋषि कहते हैं कि तुमने यह वेदमन्त्रमें दृष्टिपात नहीं किया होगा। वेद-मन्त्रयह कहता है 'अस्माकम् रुद्रो वरुणावतम् देवम् हिरणस्ततास्म वरुणोति देवाः' यह वेद-मन्त्रक्या कह रहा है इसको विचारो। अब श्वेतकेतु ऋषि ने जब इस मन्त्रपर विचार किया तो इसमें कुछ और विज्ञान की तरंगे उत्पन्न हुई। विभक्त करने से ऐसा प्रतीत होने लगा। परन्तु महात्मा मुद्गल ने एक ही वाक्य कहा, 'चेतनम् अब्रहे वरुणास्तुति मत्वानि देवः प्रहः' हे श्वेतकेतु! तुम शान्त मुद्रा में विद्यमान हो करके इसको बाह्य-जगत् में न दृष्टिपात करो, इसको आन्तरिक जगत् में ले जाओ। जिस इन्द्रिय का जो विषय है उसी में परिणत कर दो। अब उसको उसी में ओत-प्रोत होकर गम्भीर चिन्तन करो। मुद्गल ऋषि का यह वाक्य उन्होंने अपने में धारण कर लिया, धारण करने के पश्चात् वे मौन हो गए। संसार को दृष्टिपात करने लगे, मानो चैतन्य में रमण करने लगे। चैतन्य का आश्रय होते ही विज्ञान में सफलता प्राप्त हो गई। तो परिणाम क्या? विज्ञान मानव का मौलिक गुण है। यह विभक्त क्रिया से, परम्परागत से अभ्यस्त है।

मैं आज तुम्हें ऋषियों के मन्तव्य प्रकट करने के लिए नहीं आया हूँ। आज तुम्हें मैं उद्गाता बनाने के लिए आया हूँ। वेदमन्त्रकह रहा था, उद्गमम् ब्रह्मणे वर्षं तमः प्रणाम् देवम् ब्रह्मणे अस्माकम्' वेदमन्त्रयह कह रहा है कि हे 'ब्रह्मणे ब्रहे' मानव तू मृत्यु से पार हो। तुझे मृत्यु के आंगन में रमण करना नहीं है। तुझे मृत्यु से पार होना है। प्रत्येक मेरी माता अपने पुत्रके लिए व्याकुल है, मानव यही विचार रहा है कि तेरी मृत्यु न हो। परन्तु मृत्यु से कैसे उलांघा जाए। इस मृत्यु से कैसे हम पार हों। यह एक बहुत गम्भीर, चिन्तनीय विषय है। जिस चिन्तनीय विषय को प्रजापति और इन्द्र दोनों एकान्त स्थली में विद्यमान हो करके अनुसन्धान करते थे, चिन्तन करते थे और उद्दालक गोत्रमें नाना ऋषि इस प्रकार के हुए हैं जिन्होंने मृत्यु पर विजय कर लिया था। दगदडिये गोत्रीय ऐसे राजा हुए हैं जिन्होंने मृत्यु को विजय कर लिया था। मृत्यु से विजय होने का अभिप्राय क्या है। ज्ञान के प्रकाश में मानव पहुंच जाता है। उस प्रकाश में जाने के पश्चात अन्धकार नहीं रहता और अन्धकार ही मानव की मृत्यु है। वेद का ऋषि कहता है ''मोत्वानी तवे ब्रहेवृताः''ए शरीर का विच्छेद होना कोई मृत्यु नहीं है परन्तु अज्ञानता से समाज में रहना ही मृत्यु है।

दैत्य-देव चर्चा

मेरे प्यारे! मैं दैत्य और देवताओं की चर्चा कर रहा था। देवताओं ने यह विचारा कि हम दैत्यों को विजय करना चाहते हैं। दैत्यों से आगे जाना चाहते हैं और प्रकाश में जाना चाहते हैं, मृत्यु से पार होना चाहते हैं। सब देवता घ्राण के द्वारा पहुंचे। जैसे इस शरीर में वाणी है और जब यह परिधि से ऊर्ध्व हो जाती है तो यह वाणी

अग्नि बन जाती है और जहाँ अग्नि बनी वाणी मृत्यु से पार हो गई, मृत्यु को उलांघ लिया। तो यह वाणी अग्नि ही कहलाती है। जहाँ यज्ञ के दस पात्रों का वर्णन आता है, वहाँ अग्नि का भी वर्णन आता है और वह जो अग्नि है वह द्यौ-लोक तक पहुंच जाती है। उसी अग्नि के द्वारा अदिति इत्यादि प्रकाशित होते हैं।

तो मेरे प्यारे! यहाँ घ्राण इन्द्रिय का वर्णन आया। वे देवता घ्राण के द्वार पर पहुंचे और घ्राण से नमस्कार करके बोले, हे 'उद्गम् ब्रह्मणे उद्गातः प्रवाहाः' इस यज्ञशाला में तू विद्यमान है। इस यज्ञशाला का तू उद्गाता बन, उद्गीत गाने वाली बन। तो घ्राण ने कहा, बहुत प्रिय! तो बेटा! यह उद्गीत गाने लगी। परन्तु जब यह उद्गीत गाने लगी तो दैत्यों को यह प्रतीत हो गया कि देवता तुमसे आगे जाना चाहते हैं। मृत्यु से पार होना चाहते हैं। देखो, दैत्यों ने जाकर घ्राण को छेदन कर दिया अथवा पाप से बींद्ध दिया जब पाप से छेदन कर दिया, छेदन करने के पश्चात् जहाँ यह उद्गीत गा रही थी, देवताओं का गान गा रही थी। वहाँ यह दैत्यों का भी गान गाने लगी तो देवता मौन हो गए और विचारा कि हम तो ह्रास हो गए।

अब मेरे प्यारे! क्योंकि "प्राणे ब्रवेह वृताः" अब जब घ्राण दैत्यों का भी उद्गीत गाने लगी और देवताओं का भी उद्गीत गाने लगी तो जैसे नौका गंगा के मध्य में गृहीत हो जाती है इसी प्रकार यह घृणित हो गई। मुनिवरो! न तो "उन्म ग्रतानोश्चय" न इस आंगन में, न उस आंगन में है यह मध्य में गृहीत हो जाती हैं जब यह घ्राण इन्द्रिय अपने में गृहीत होने लगी तो प्राण देवता आ गए। अब प्राण ने कहा कि हे घ्राण! मैं मृत्यु से पार लांघना चाहता हूँ। घ्राण प्राण की सखा बन गई, वायु की सखा बन गई। प्राण ने, वायु ने जब इसे अपने में अपनाया तो मृत्यु से पार ले गए।

बेटा! यही घ्राण मानव के शरीर में, शरीर रूपी यज्ञशाला में यह घ्राण इन्द्रिय बन करके यह पृथ्वी से अपना समन्वय कर रही थी। जब प्राण देवता उसके समीप आए, तो प्राण ने इसको मृत्यु से उलांघ दिया। यह घ्राण इन्द्रिय ही इस शरीर में घ्राण कहलाती है परन्तु जब यह उपाधि से दूरी हो गई तो यह वायु बन गई। वायु के स्वरूप को इसने धारण कर लिया। परन्तु यह वायु बन करके देखो संकीर्णता, स्वार्थपरता न रही। जब घ्राण में स्वार्थपरता न रही तो उसी समय वह मृत्यु से पार हो गई।

इसी प्रकार हे मानव! जब तू संसार में निष्काम बन जाता है, स्वार्थपरता नहीं रहती, चेतना से तेरा आश्रय हो जाता है तो उसी समय तू मृत्यु से पार हो जाता है और जब तक तेरे में स्वाथपरता बनी रहती हैं और इतनी स्वार्थपरता बन जाती है कि तू अज्ञान रूपी मृत्यु में रमण करता रहता है। तो वेद के ऋषि बेटा! बहुत ऊंची उड़ान उड़ते रहते हैं। वेद के ऋषियों ने बहुत ऊंची उड़ान उड़ी इस सम्बन्ध में। मृत्यु को लांघने वाला कौन? देखो! प्राण देवता है। अब हम मृत्यु से घ्राण इन्द्रिय के द्वारा कैसे पार होते हैं।

साधना

बेटा! अब मैं तुम्हे साधना के क्षेत्रमें ले जाना चाहता हूँ। एक समय जब हम अध्ययन करते थे तो कुछ गार्गी गोत्रके जिज्ञासु और कुछ अंगीरस गोत्रके जिज्ञासु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के द्वार पर पहुंचे और उन्होंने कहा कि महाराज हम यह जानना चाहते हैं कि घ्राण इन्द्रिय के द्वारा हम मृत्यु को कैसे लांघ सकते हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा शान्त। वे शान्त विद्यमान हो गए। पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा कि यह जिज्ञासा तुम्हे कैसे उत्पन्न हुई, यह पिपासा कैसे जागरूक हुई है! जिज्ञासुओं ने कहा प्रभु हम बहुत समय से अभ्यास कर रहे हैं, बहुत समय हो गया है अध्ययन करते हुए परन्तु एक ही वृतियों में आकर हम ग्रसित हो गए हैं, हम उसे जान नहीं पा रहे हैं कि घ्राण में आकर हम मृत्यु की आभा को अपने से दूर चाहते हें।

मेरे प्यारे देखो! गुरुदेव ने कहा कि तुमने किसी काल में शीतली प्राणायाम किया है? उन्होंने कहा हमने

किया है। परन्तु शीतली प्राणायाम का सम्बन्ध चन्द्रमा से होता है। गुरुदेव ने कहा क्या तुमने किसी काल में अग्नि प्राणायाम किया है। जिज्ञासु बोले कि महाराज किया है, उसका समन्वय अग्नि से होता है। उन्होंने कहा तुमने किसी काल में धनुर्प्राणायाम किया है। जिज्ञासुओं ने कहा महाराज किया है, उस धनु प्राणायाम का सम्बन्ध लक्ष्य से होता है। गुरुदेव ने कहा क्या तुमने किसी काल में संकल्प प्राणायाम किया है अथवा नहीं। जिज्ञासुओं ने कहा नहीं किया।

मेरे प्यारे देखो! हमारे यहाँ कितने ही प्रकार के प्राणायाम होते हैं एक सूर्य प्राणायाम होता है, एक चन्द्र प्राणायाम होता है, एक शीतली प्राणायाम होता है, एक भस्त्रिका प्राणायाम होता है और एक प्राणायाम होता है जो संकल्प मात्रहोता है। इसके सम्बन्ध में मैं आज बहुत पुरातन काल की वार्ता प्रकट कर रहा हूँ पुत्रो! जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अभ्यास करते रहे। तो मुनिवरो! इन श्रेष्ठ प्राण का, प्राणायाम का वायुमण्डल से जो सम्बन्ध है और वायुमण्डल में जो परमाणु गृहीत हो रहे हैं उस प्राणायाम का सम्बन्ध आहार से होता है क्योंकि आन्तरिक परमाणु उसी प्रकार के बनाने होते हैं, तो बाह्य-जगत् के जो परमाणु होते हैं उससे उनका समन्वय होता है।

पीपल पंचांग का प्रभाव

बेटा! यदि अशुद्ध परमाणु आहार के, व्यवहार के कारण बन गये, उनका बाह्य-जगत् से, अशुद्ध परमाणुओं से समन्वय हो गया है तो कोई मानव साधक नहीं बन सकता। साधक वही प्राणी बन सकता है जिसका आहार और व्यवहार शुद्ध हो। मुझे स्मरण आता रहता है, पूज्यपाद गुरुदेव ने उन जिज्ञासुओं को पीपल का पंचांग पान कराया। पीपल एक वृक्ष है, उसकी पाँचों वस्तुओं को ले करके जल के द्वारा अग्नि में तपाया जाता है। उसको पान करने से मानव के हृदय की शुद्धता हो जाती है। मानव का हृदय शुद्ध और पवित्रजब बन जाता है। उस काल में मेरे पुत्रो! वे साधक, वे जिज्ञासु के हृदय की ग्रन्थियां स्पष्ट हो जाती हैं और हृदय की ग्रन्थियां जिस काल में स्पष्ट हुई उसी काल में उसे वायुमण्डल का ज्ञान हो जाता है और वह मृत्यु अन्धकार से दूर होने लगता है, अन्धकार नहीं रहने पाता।

मेरे प्यारे! मुझे स्मरण है यहाँ ऐसे-ऐसे ऋषि हुए जिन्होंने 100-100 वर्ष प्राणों को जहाँ का तहां स्थिर रखते हुए पार हो गये। देखो! परमाणुवाद को न जाना है, न आना है, एक 'जड़वम् मृताम् अव्रताम् देवाः' उसी में, अपने में रत हो गये। तो मेरे पुत्रो! यह मैं तुम्हें साधकों की चर्चा करता चला गया। साधकों की चर्चाएं, साधक क्या करते हैं, साधना क्या है? देखो साधना है कि मन और प्राण दोनों को एक सूत्रमें ला करके दोनों को अन्तर्मुखी, अन्तर्हृदय में शांत करना साधना कहलाती है।

मेरे प्यारे! यह जो मन है यह जड़ है, मन प्राण से सिंचकर ज्ञान का माध्यम बन जाता है और जितनी भी क्रिया है वह सब मन के द्वारा ही रहती हैं और मन ज्ञान का माध्यम बन करके इससे विभक्त हो जाता है, जब प्राण से विभक्त हो गया, तो यह इतना विभक्त हो गया है कि मानव को आहार और व्यवहार का भी ज्ञान नहीं रहता। उसे यही प्रतीत नहीं तू क्या आहार कर रहा है, क्या व्यवहार कर रहा है?

मन का सम्बन्ध

मेरे पुत्रो! मुझे स्मरण है आदि ऋषियों ने देखो! महर्षि रेवक मुनि महाराज जब साधना करने लगे, तपस्या करने लगे, प्राण और मन का निरोध करने लगे, उन्होंने उस अन्न को एकत्रित करना प्रारम्भ किया, जिस अन्न को सिलक कहते हैं। जिस अन्न पर किसी का अधिकार नहीं है उस अन्न को एकत्रित करना और जलों में उसका शोधन करके उसका पान करना। 101 वर्ष तक रेवक मुनि गाड़ी के नीचे रहे, 101 वर्षों तक 'अन्नाद का मनोवृत्ति'

यह मन कहा जाता है, मन का सम्बन्ध आहार से है। यदि मानव का आहार पवित्रहै, आहार महान् है तो मन और प्राण का निरोध होता है। साधना की प्रतिक्रियाएं गति करती रहेंगी और मानव की मृत्यु का भय नहीं रहेगा, अन्धकार ही नहीं आएगा, परन्तु यह अन्धकार कहाँ से आता है कि मानव का आहार और व्यवहार दोनों के अशुद्ध होने से मन की जो प्रतिक्रिया है वह और भी जड़वत् हो जाती है और जितनी यह जड़वत् होती है जितना प्राण से इसका विभाजन होता रहता है, उतना ही इसमें जड़ता आती रहती है, उतना अज्ञान में यह परिणत हो जाता है।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय मुझे वर्णन कराया कि आधुनिक काल का जो वैज्ञानिक है वह आहार-व्यवहार पर विचार नहीं कर रहा परन्तु वह चन्द्रमा की यात्रा कर रहा है। वह परमाणुओं की गति कर रहा है तो मैंने अपने पुत्रसे एक ही उत्तर दिया, इनके प्रश्नों का उत्तर एक ही था कि चन्द्रमा में जाना कोई आश्चर्य नहीं है, वायुमण्डल में वाहनों के द्वारा गति करना कोई आश्चर्य नहीं है, मंगल में जाना कोई आश्चर्य नहीं है, गन्धर्व लोकों में जाना भी कोई आश्चर्य नहीं है-परन्तु आत्मलोक में प्रवेश करना मेरे प्यारे यह मृत्यु से पार होना है। यदि चन्द्रमा में चला गया है आत्मा के लोक को नहीं जाना है, एक मानव बुध, मंगल में चला गया है, अपने हृदय रूपी आत्मा को नहीं जानता तो उसका जाना व्यर्थ है। मेरे प्यारे देखो इससे मानव का कल्याण होता है। यह कोई आश्चर्य नहीं है मानव चन्द्रमा में चला जाता है। यहाँ मानव विद्यमान है चन्द्रमा में चला जाता है, यन्त्रके द्वारा चला गया कोई आश्चर्य नहीं। एक मानव वायुमण्डल में, मन गति कर रहा है, उड़ान उड़ रहा है, एक स्थली पर विद्यमान है, एक मानव यान के द्वारा चला जाता है कोई आश्चर्य नहीं। एक मानव वैज्ञानिक बन करके मंगल में चला गया है कोई आश्चर्य नहीं। परन्तु वह जो हृदयरूपी गुफा है जिसमें चेतना आत्मा विद्यपान है, उसको नहीं जाना। इस शरीर में रहने वाला प्राणी अपने को ही नहीं जानता यह कैसा आश्चर्य है। उसको तो जानना बहुत अनिवार्य है। जिस गृह में वास कर रहे हैं, अध्ययन कर रहे हैं, प्राणायाम कर रहे हैं, साधना में परिणत हो रहे हैं, परन्तु वेद का अध्ययन चल रहा है-अरे मानव यह भी नहीं जानता कि वेद का अध्ययन किया हुआ है, वेद का विचार आ रहा है परन्तु कोई नस-नाड़ी ऐसी तेरे द्वारा है जिसमें वेद की पोथी की पोथी विद्यमान है; कोई है परन्तु देखो कोई दृष्टिपात् नहीं आती।

तो मुनिवरो देखो! विचार आता है इन वाक्यों में कि इस मानव के अन्तर्हृदय का जो समन्वय है वह 'चितम् ब्रह्मणाः वरुणो अस्तोः चितम् ब्रह्मणः' चित्त से रहता है। बाह्य चित्त, आन्तरिक चित्त दोनों का मिलान होते ही स्मरणशक्ति जागरुक हो जाती है! जहाँ बाह्य चित्त और आन्तरिक चित्त का मिलान हुआ करोडों जन्मों के संस्कार मानव के समीप आने प्रारम्भ हो जाते हैं। मैं आज तुम्हें बहुत अद्भुत एक वाक्य प्रकट करा रहा था। आज मैं कोई विशेष चर्चा प्रकट नहीं करूंगा।

विचार क्या चल रहा था कि घ्राण के द्वारा हम, घ्राण से मृत्यु के पार होना चाहते हैं। घ्राण इन्द्रिय के द्वारा मानव साधना कर रहा है, प्राणायाम् कर रहा है, शीतली प्राणायाम करके चन्द्रमा को जान रहा है, अग्नि प्राणायाम करके अग्नि के तत्वों को अपने में भर रहा है। वह जो संकल्पमय प्राणायाम है, पुत्रो! यह सर्वत्रब्रह्माण्ड एक संकल्पमात्र दृष्टिपात् आ रहा है। जब मैं अपनी माता के द्वार पर जाता हूँ, माता से यह प्रश्न करता हूँ, हे माता, मेरा यह जो पुत्रहै यह क्या हैं? तो माता कहती है, मैं नहीं जान पायी।

संकल्प प्राणायाम

मेरे प्यारे वह जो पुत्रहै वह क्या है? इस शरीर में दो ही तो वस्तु हैं। परमाणु है और चेतना है जिससे परमाणु गुथे हुए हैं। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि वे परमाणु पुत्रहै, शरीर पुत्रहै या आत्मा पुत्रहै जो इस शरीर में वास कर रहा है। तो मुनिवरो! देखो, माता निरुत्तर हो जाती है। बुद्धिमान भी इसमें बुद्धि से शांत हो जाता है। तो

उत्तर प्राप्त होता है, न तो आत्मा ही पुत्र किसी का बनता है, न यह परमाणु ही पुत्र बनते है परन्तु दोनों का समन्वय हुआ, संकल्प बना है, संकल्प मात्र से माता का पुत्र कहलाता है। मेरे प्यारे! वह संकल्प ही तो माता है, संकल्प ही तो पुत्रहै इसी प्रकार जो संकल्प प्राणायाम करता है उसका संकल्प बना हुआ है। मैं प्राणायाम कर रहा हूँ, शांत मुद्रा में विद्यमान है, संकल्प कर रहा है प्राण के द्वारा। प्राण बाह्य जगत् से आन्तरिक जगत् में जा रहा है। उसके साथ मन की जो प्रतिक्रिया है, मन की जो चचंलता है उस प्राण रूपी सूत्रमें पिरोई जाती है। संकल्प बन रहा है, संकल्प के द्वारा एक-एक मनका बन करके वह व्यापक बन रहा है। उस संकल्प के द्वारा ही वह प्राणी प्राणायाम कर रहा है। शीतली प्राणायाम को भी त्याग देता है। मैं अपने मनके कहाँ ले जाना चाहता हूँ, चेतना में रत होना चाहता हूँ, चेतना में प्रवेश करना चाहता हूँ। तो मुनिवरो! संकल्पमात्रसे प्राणायाम कर रहा है, सूर्य प्राणायाम कर रहा है संकल्प उसके साथ है और चन्द्र प्राणायाम कर रहा है संकल्प उसके साथ है, परन्तु आगे चल करके उस संकल्प को भी त्याग देता है। क्योंकि संकल्प से ही तो सर्वत्रजगत् विद्यमान है परन्तु संकल्प को भी त्याग दिया तो केवल निस्संकल्प हो करके बेटा! मन और प्राण दोनों का मिलान हो गया है, मन और प्राण जहाँ दोनों का मिलान हुआ वहाँ केवल जिसे हम 'कारणपति करणस्त्वं देवाः' मेरे प्यारे! दोनों मनके एक सूत्रमें पिरोये हुए हैं वह सूत्रही चेतना है। यह जो विभक्त क्रिया, संकल्प क्रिया सब समाप्त हो गयी।

तो बेटा! यह सब दर्शन शास्त्रों की वार्ता है, दर्शन की विवेचना है, आज हम इसके ऊपर गम्भीरता से अध्ययन करते चले जाये। तो विचार आता है मुनिवरो! देखो, हमें प्राणायाम करना चाहिए। प्राणायाम इसलिए क्योंकि संकल्प के लिए बहुत अनिवार्य है कि इससे हमारी ब्रह्म और चरी की रक्षा होती है 'ब्रह्मचरिष्यामि' मानव शरीर में जो ब्रह्मचर्य है जिसकी हम ध्रुवा गति बना रहे थे, संकल्प के द्वारा पुत्र-पुत्रियों में इसे विभक्त कर रहे थे अब लो इसकी गति ऊर्ध्वा बन जाती है और इसकी गति जहाँ ऊर्ध्वा बनी, ऊर्ध्वा बनते ही वह परमाणु सर्वत्रब्रह्माण्ड को समेटने वाले बन जाते हैं। सर्वत्रजो मानव शरीर में इन्द्रियों से प्रतिक्रियाएं परमाणु अन्तरिक्ष में रमण कर गया था उन पर परमाणुओं को यह ऊर्ध्वागति वाला इसको खिलवाड़ जान करके इसे अपने अन्तर्हृदय में, हृदय रूपी गुफा में जो चेतना है उससे उसका समन्वय स्वीकार करके बाह्य जगत् की संकल्प शक्ति को भी त्याग देता है।

अहिल्या कृतिभा यत्र

तो परिणाम क्या? मेरे प्यारे इसलिए मानव को प्राणायाम करना चाहिए, यह प्राण की गति इतनी विशाल है, इतनी महान् है कि मुनिवरो देखो। घ्राण इन्द्रिय के द्वारा अभ्यस्त होने वाले ऐस-ऐसे महापुरुष हैं, तुम्हें स्मरण होगा त्रेता के काल का वाक्य, भगवान राम जब भयंकर वनों में रमण करते रहते थे तो वह पृथ्वी के कणों की सुगन्धि के द्वारा ही यह जानते थे कि कितना खनिज कितनी दूरी पर इस पृथ्वी के गर्भ में विद्यमान है। तो मेरे प्यारे! वैज्ञानिक कैसे बनता है इस प्राण के द्वार प्राणायाम करने से। मुझे स्मरण है जिस समय भगवान राम महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज के द्वार पहुंचे। तो उन्होंने घ्राण इन्द्रिय के ऊपर अनुसन्धान किया और उन्होंने एक यत्रका निर्माण किया था। जिस यत्रका निर्माण ''अहिल्या कृतिभा यत्र'' कहलाता था। उस अहिल्या कृतिभा यत्रमें यह विशेषता थी कि इस पृथ्वी के गर्भ में कितनी दूरी पर कौन-सा खनिज विद्यमान है वह उस यत्र में दृष्टिपात आता रहता था।

घ्राण के द्वारा, घ्राण की दुर्गन्ध के द्वारा यत्रों की भी आवश्यकता नहीं रही। केवल पृथ्वी के कणों को लिया और वह प्राण की अनुपम क्रिया पृथ्वी के खनिज को निर्णय करा देती थी कि कौन-सा खनिज कितनी दूरी पर है, कितनी दूरी पर स्वर्ण है और कितनी दूरी पर नाना खनिज हैं यह उन्हें दृष्टिपात होने लगी। तो यह सब घ्राण और

प्राणायाम की प्रतिभा होती है। तुम्हें स्मरण है कि मानव घ्राण के द्वारा परमाणुओं के आदान-प्रदान की जानकारी कर लेता है कि इस प्रकार का परमाणु गति कर रहा है और कहाँ गति कर रहा है, जान लेता है।

मेरे प्यारे! देखो जिस समय भगवान राम भयंकर वन में रमण कर रहे थे तो जब वे अत्रिमुनि के आश्रम में पहुंचे तो अत्रिमुनि के आश्रम में उन्हें एक आसन दिया गया और आसन पर जब वे विद्यमान हो गये तो उन्होंने उन परमाणुओं की जानकारी की। तो अत्रिमुनि के आश्रम में जो परमाणु रमण कर रहे थे वह हिंसक परमाणु थे। अत्रिमुनि से राम बोले कि महाराज यह क्या है आप तो महापुरुष हैं, महान् हैं यह हिंसक परमाणु आपके यहाँ कैसे आदान-प्रदान कर रहे हैं। अत्रिमुनि ने कहा, राम यह उस समय हुआ जब मेरे निकट राजा रावण के एक सखा, 'कृताम वनसतीहः' रावण के राष्ट्र के मारीच नामक उनके सेनाग्राही उनकी सेना यहाँ रहती थी, सेना के रहने से उनके विचार हिंसक थे और हिंसक होने से वे परमाणु यहाँ आदान-प्रदान कर रहे हैं। राम ने कहा इस प्रकार के परमाणु आपके यहाँ, आपका मन कैसे शोधित होता है। तो महर्षि अत्रिकहते हैं, राम मैं संकल्प प्राणायाम करता हूँ परन्तु संकल्प मात्र से मैं जीवित रहता हूँ। राम ने भी वही प्राणायाम प्रारम्भ किया उसके पश्चात् देखो। उनके आसन का शोधन हो गया। तो परिणाम यह, मुनिवरो! आज हम किसी भी वस्तु को विचारना चाहते हैं तो यह जो घ्राण इन्द्रियां हैं, प्राणायाम है इसके द्वारा हम कितना शोधन कर सकते हैं। मुझे स्मरण है कि महर्षि अत्रिमुनि महाराज और भगवान राम एक वर्ष तक उस आश्रम में रहे तो उन्हें प्राण के द्वारा वायुमण्डल से परमाणुओं को अपने में ग्रहण करना, वायुमण्डल के प्राण के द्वारा परमाणुओं को लेना, स्थूल अन्न को नहीं पान करते थे। एक वर्ष तक इस प्रकार का तप किया। तप करने से बेटा, ऊर्ध्व गति बन गई परमाणुओं की। ऊर्ध्व गति बन करके वे देवताओं की सभा में सुशोभित हो गये।

तो परिणाम हमारा इन वाक्यों को उच्चारण करने का यह है कि हमारे प्राणायाम की प्रतिक्रियाएं भव्य है देखो! भगवान राम 12 कलाओं के विशेषज्ञ कहलाते थे। 12 कलाओं को जानते थे जैसे प्राचीदिग्, दक्षिणी दिग्, प्रतीचीदिग्, उदीचीदिग्, ध्रुवा, ऊर्ध्वा। 6 कलाएं तो यह कहलाती थीं पूर्व, दक्षिणा, पश्चिम, उत्तरायण, ध्रुवा और ऊर्ध्वा। भगवान राम इसके विज्ञान को भी जानते थे। आज मैं बेटा इस गम्भीर भयंकर वन में जाने के लिए नहीं आया हूँ।

पुत्रो! उच्चारण कर रहा था कि संसार में प्रत्येक मानव को प्राणायाम करना चाहिए। आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करना है, मृत्यु से पार होना है तो देखो यह जो प्राणों की क्रिया चलती है, समय पर सूर्य जनता है, समय पर चन्द्रायण चलता है, इन चन्द्र और सूर्य दोनों की गतियों को जानो। किसी समय वायु के, पृथ्वी के परमाणु विशेष गति करते हैं, किसी समय जल के परमाणु विशेष गति करते हैं, किसी समय अग्नि के परमाणु विशेष गति करते हैं इन परमाणुओं को जानने वाला प्राण-तत्त्व को, प्राण की क्रियाओं को जानने वाला संसार का सबसे ऊंचा वैज्ञानिक बन पाता है, बन ही नहीं पाता, परन्तु बन जाता है।

नाना वैज्ञानिक ऐसे हुए हैं जिन्होंने वायुमण्डल में परमाणुमात्र से वायु की तरंगों को जान करके उससे कुछ खनिजों को जाना है। अणु और परमाणुओं को जानने का अभ्यास किया है। विचार क्या कि हमें प्राणायाम करना चाहिए। इन प्राणों से नाना प्रकार के रुग्ण समाप्त हो जाते हैं। नाना प्रकार की रुग्णता दूर होकर मानव का जीवन स्वस्थ बन सकता है। आज मैंने तुम्हें आध्यात्मिक प्राणायाम पक्ष की विवेचना की है परन्तु कल मुझे समय मिलेगा कल मैं तुम्हें भौतिकवादी शरीर की, प्राण चिकित्सा क्या है इसके सम्बन्ध में कुछ विवेचना कल प्रकट करूंगा।

देखो मुनिवरो! आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा क्या है कि हम जहाँ प्राणायाम करते हैं, पृथ्वी के गर्भ में प्राण से जानते हैं, प्राण के द्वारा वायु की गति को जानते हैं कि यह मित्रशक्ति रमण कर रही है

या वरुण शक्ति रमण कर रही है। वायु वेग से रमण कर रही है परन्तु समुद्रों से वायु का मिलान हो करके जलप्लावन को लेकर के आता है तो घ्राणदेवता, जो घ्राण के ऊपर प्राणायाम करने वाले हैं वे उच्चारण कर देते हैं कि समुद्र से इस प्रकार की तरंगे उत्पन्न हो रही हैं और उत्पन्न हो करके इतना प्राणी नष्ट हो सकता है।

मेरे प्यारे जो बड़वानल नाम की अग्नि है वह जो समुद्रों में प्रदीप्त हो जाती है इसी प्रकार मानव के शरीर में भी बड़वानल की अग्नि जब ओत-प्रोत हो जाती है तो मानव मृत्यु की शैय्या पर विद्यमान हो जाता है। तो मैं यह उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि प्राण की चिकित्सा के सम्बन्ध में जो ऋषि-मुनियों का अनुभव है वे चर्चाएं मैं तुम्हें कल प्रकट करूंगा। प्राण चिकित्सा क्या है, प्राण से कैसे रुग्ण शान्त होते हैं। यह चर्चाएं बेटा मैं कल प्रकट करूंगा और इन प्राणों की क्रियाओं के द्वारा हम मृत्यु से पार हो जाते हैं, मृत्यु को उलांघ जाते हैं यह विवेचना दोनों का समन्वय कल करूंगा। आज का वाक्य समाप्त अब वेदों का पठन-पाठन होगा। इसके पश्चात् यह वार्ता समाप्त होगी। दिनांक : 02-05-1980, स्थान : दुर्गयाना मन्दिर, अमृतसर।

६ षष्ठ अध्याय प्राणों का महत्व-2 03 05 1980

जीते रहो! देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भान्ति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्रवेद-वाणी में उस मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि प्रत्येक वेद-मन्त्रउसके ज्ञान और विज्ञान का वर्णन कर रहा है। उसकी रचना का भान प्रायः मानव के अन्तर्हृदय में अंकुरित होता रहता है। परन्तु आज का हमारा वेदमन्त्रक्या कह रहा है, जब हम इसके ऊपर विचार-विनिमय करना आरम्भ करते हैं तो बेटा! एक-एक वेदमन्त्रमें ब्रह्माण्ड का ज्ञान-विज्ञान हमें प्रायः दृष्टिपात होने लगता है। जैसे एक-एक की रचना एक परमाणु में ही विद्यमान है। जैसे यह ब्रह्माण्ड नाना रूपों में हमें दृष्टिपात आ रहा है, इसी प्रकार जब हम चिन्तन करते हैं तो प्रायः ऐसा दृष्टिपात होने लगता है जैसे परमपिता परमात्मा का ज्ञान तथा विज्ञान एक वेदमन्त्रमें दृष्टिपात् आ रहा है।

आओ मेरे पुत्रो! आज कुछ विशेष चर्चा न देकर कुछ परिचय देने आया हूँ। वह परिचय क्या? हमारे यहाँ प्रत्येक वेद-मन्त्रका जो परिचय है वह परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान है। एक ही वेदमन्त्रमें तुम्हें व्यवहार दृष्टिपात आएगा। उसी वेद-मन्त्रमें परमाणुवाद की विद्या दृष्टिपात आने लगेगी परन्तु जब और गम्भीरता में पहुंचेंगे तो आध्यात्मिक विज्ञान तुम्हें दृष्टिपात आएगा, तो यह तीन प्रकार की आभा हमें एक ही वेद-मन्त्रसे दृष्टिपात होने लगेगी। जितना भी यह मानव समाज या प्राणी समाज है उस सर्वत्रप्राणियों में वह मेरा देव ओत-प्रोत हो रहा है।

प्राणायाम का महत्त्व

तो मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें उस घ्राण-इन्द्रिय के द्वार पर ले जाने के लिए आया हूँ। यह घ्राण-इन्द्रिय क्या कह रही है? यह नाना प्रकार की सुगन्धियों को ले रही है। परन्तु स्वार्थपरता में आ करके यह असुगन्धित भी बन जाती है। जब हम इस घ्राण-इन्द्रिय के ऊपर व्यवहार में विचार-विनिमय करने लगते हैं तो इसके व्यवहार में जितना भी यह समाज अथवा यह पृथ्वी का विज्ञान प्रत्येक श्वासों की प्रतिक्रिया को यह जानती है। एक मानव मानव के समीप विद्यमान है परन्तु जब मानव के आन्तरिक विचारों में प्राण के द्वारा, श्वास के द्वारा उसके विचार व्यक्त हो रहे हैं और वह जो वैज्ञानिक, जो प्राण इन्द्रियों के विशेषज्ञ होते हैं, प्रत्येक संवाद की प्रतिक्रिया को जान करके यह जान लेते हैं कि इसके आन्तरिक विचार यह कह रहे हैं।

मेरे प्यारे! देखो, यह प्राणवाद ही तो उसको मृत्यु से पार ले जाता है, मृत्यु से उसे उलांघ देता है, नाना

बन्धनों से दूरी कर देता है। वह स्वार्थपरता की परिधि समाप्त हो जाती है तो यही घ्राण-इन्द्रिय इस मानव के शरीर में वायु बन करके विद्यमान है। क्योंकि वायु ही घ्राण कहलाती है और जब यह परिधियां समाप्त हो जाती हैं तो यही मृत्यु से पार हो करके वायु देवता बन गया। वायु देवता के बन जाने के पश्चात् देवत्व को यह प्राप्त हो गया।

तो विचार क्या? मैंने बहुत पुरातन काल में यह निर्णय देते हुए कहा था कि प्रत्येक मानव, प्रत्येक मेरी पुत्रियों को प्राणायाम करना चाहिए प्राण की भिन्न-भिन्न प्रकार की जो प्रतिक्रियाएं हैं उनको जानना चाहिए, क्योंकि पंचमहाभूतों में यह घ्राण इन्द्रियां गति करती रहती हैं किसी काल में इसमें पार्थिव परमाणु हैं, किसी श्वास के साथ में अग्नितत्व पर रमण कर रहा है, किसी श्वास की धारा में 'जलम् ब्रह्मणे' जल तत्त्व रमण कर रहा है। तो मुनिवरो! इनके परमाणु बन करके अन्तरिक्ष में रमण कर रहे हैं। अब जो गति मानव के प्रत्येक श्वास के साथ में होती है वह गति अन्तरिक्ष में परमाणुवाद ही होती है।

नक्षत्रों का त्रिकोण

अब यह आन्तरिक जगत् बाह्य-जगत् दोनों की एक सन्तुलना की जाती है कि हमको जितना भी यह जगत् दृष्टिपात् आता है, इस सर्वत्रब्रह्माण्ड के मूल में एक प्राण गति कर रहा है। यह प्राण ही है जो एक सूत्रबन करके लोक-लोकान्तर में पिरोया हुआ है। तुम्हें यह दृष्टिपात हो गया होगा मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय कराया। एक शनि मण्डल है, एक स्वाति नक्षत्र है और एक जेठाय नक्षत्र है, इन तीनों मण्डलों का त्रिकोण बन जाता है, जिस काल में त्रिकोण बनता है उस काल में यह प्राण जल में प्रवेश करके अग्नि की धाराओं में, अग्नि जलों में प्रचण्ड हो जाती है उस समय जल प्लावन आते रहते हैं।

मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में कहा कि जिस समय जल की अग्नि यह प्राण-स्वरूप विकृत होता है तो देखो, जल में अग्नि प्रवेश हो जाती है और यह भयंकर अग्नि बनकर के पृथ्वी-मण्डल के प्राणियों को नष्ट करने लगती है। तो यह सब धाराएं क्या हैं? वेद का ऋषि यह कहता है 'प्राणम् ब्रह्मे वरुणोस्तुतिः अधनम् देवम् प्रजाम् मयावरधोः' कि प्राण को हम विकृत न होने दें। यह प्राण विकृत किस काल में होता है? विकृत उस काल में होता है जबकि मानव को समाज में विषय कामना की बलवती हो जाती है। वह कामना क्रोध में परिवर्तित हो जाती है। वह अति-स्वार्थ में परिवर्तित हो जाती है। वही धाराएं नाना प्रकार की धारा बन करके, अपने शरीर की अग्नि बन अमृत को अग्नि में प्रवेश कर दिया जाता है। अपने-अपने दोषों के कारण और वही परमाणु, वही गतियां अन्तरिक्ष में होती हैं।

मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें निर्णय देते हुए कहा था, वाक्य प्रकट करते हुए कहा था देखो, इसके ऊपर पुरातन काल से ही ऋषि-मुनि अनुसन्धान करते रहे हैं। आओ आज मैं तुम्हें कुछ ऋषियों के द्वार पर ले जाना चाहता हूँ। मुझे वह काल स्मरण है ऋषि-मुनियों का, वह भव्यकाल जिस काल में वे अनुसन्धान करते रहते थे। वेद का मन्त्रऋषियों के मध्य में विद्यमान है और उसके ऊपर वे मनन करते रहते थे उनकी जो मनन क्रिया है वह कितनी उज्ज्वल और महानता में रमण करती रही है।

एक समय अंगीरस ऋषि गोत्रमें एक श्वेतकेतु अंगीरस हुए हैं। श्वेतकेतु अंगीरस मुनि महाराज तपस्या करने लगे। वे मन और प्राण दोनों को एक सूत्र में लाने का प्रयास करने लगे। यह जो पंच-इन्द्रिय हैं, इनका उन्होंने एक सांकल्य बनाया और सांकल्य बनाकर यह जो शरीर रूपी यज्ञशाला है इस यज्ञशाला में उस साकल्य की आहुति देने लगे। अब विचार आता है कि आहुति क्यों दी जाती है। वेद का ऋषि कहता है, ''मनस्त्व प्राणम् ब्रह्मणे नाना प्रवासहीः'' वेद की ऋचा यह कहती है कि यह जो दस रूपों में प्राण का विभाजन हो गया है इस प्राण क्रिया को जानने के लिए।

प्राण और मन का मूल

मेरे प्यारे! मैं तुम्हें गम्भीर दर्शनों में ले जाने के लिए कुछ परिचय दूंगा। आज प्रत्येक मानव की इच्छा होती है कि मैं मोक्ष को जानना चाहता हूँ, मोक्ष क्या है? प्रत्येक मानव के अंकुरों का वृक्ष बनता है और वृक्ष जब सिमट जाता है वह मोक्ष का नृत्य कहलाता है। मेरे प्यारे! त्रेतकेतु अंगीरस ऋषि ने 101 वर्ष का तप किया, तप करने के पश्चात् वे मन और प्राण, दोनों को जान गये। दोनों के सूत्रों को जान गये और उसका बाह्य जगत्, आन्तरिक जगत्, दोनों को जान गये। एक समय उनके द्वार सोमभानु गार्गे और सन्दुप भारद्वाज और ब्रह्मचारी कवन्धी, ब्रह्मचारी रोहिणीकेतु, ब्रह्मचारी सुदेशवन ने गमन किया। भ्रमण करते हुए यह सब त्रेतकेतु अंगीरस मुनि के द्वार पर पहुंचे। अंगीरस मुनि ने कहा, आओ ऋषियो विराजो, वे जिज्ञासु विराजमान हो गये। वे सब त्रेतकेतु से एक स्वर में बोले, महाराज हम प्राण और मन के मूल को जानना चाहते हैं। यह कहाँ से प्रारम्भ होता है, कहाँ से विभाजन होता है और कहाँ यह विभाजन हो करके इसका कैसे वृक्ष बनता है और इस वृक्ष को कैसे सिमटा जाता है।

त्रेतकेतु अंगीरस बोले कि प्रश्न तो बहुत ही प्रिय है परन्तु उन्होंने कहा हे जिज्ञासुओं! तुम मेरे द्वार पर आये हो, तुमने प्रश्न किये हैं और मैंने जो कुछ जाना है उसका उच्चारण करने का प्रयास करूंगा। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ तुमको इस विद्या को कितना आधिपत्य है? कितना जानते हो इसके सम्बन्ध में? जिज्ञासुओं ने कहा, प्रभु! हम इतना ही जानते हैं कि हमारी इन्द्रियों का और इन्द्रियों के विषयों का बाह्य जगत् होने से साकार वृक्ष बन गया है इससे आगे हम कुछ नहीं जानते। उन्होंने कहा, बहुत प्रिय, तो विद्यमान हो जाओ।

बेटा! वे विद्यमान हो गये और अंगीरस ने कहा कि तुम "अब्रनाम वरिहस्ते" छः माह तक तुम तप करो। बेटा! उन्होंने वाक्य स्वीकार किया और अंगीरस ने कहा तुम गऊओं का पालन भी करो। मेरे प्यारे! वह गऊओं का पालन करने लगे। अब यहाँ गऊ के नाना रूप माने गये हैं। ऋषि अंगीरस कौन-सी गऊओं के लिए कह रहे है, हमारे यहाँ गौ नाम इन्द्रियों को कहते हैं क्योंकि यह चंचल है। मेरे प्यारे! उन्होंने कहा तुम गऊओं का पालन करो, पालन करने का अभिप्राय क्या कि इन्द्रियों की जो चंचलता है उस चंचलता को इन्द्रियों में न रहने दो।

ज्ञान और प्रयत्न

बेटा! यह वाक्य जिज्ञासुओं ने स्वीकार किया और वह छः माह के पश्चात् अंगीरस ऋषि के चरणों में ओत-प्रोत हो गये और ऋषि से कहा, महाराज अब हमें उत्तर दीजिए। ऋषि ने कहा, तुम बाह्य विज्ञान से जानना चाहते हो या आन्तरिक जगत् से जानना चाहते हो। उन्होंने कहा महाराज हम सबसे प्रथम तो सिमटना चाहते हैं। और सिमट करके हम इस वृक्ष को भी जानना चाहते हैं। मेरे प्यारे! ऋषियों के जिज्ञासुओं के बड़े महान् प्रश्न थे। तब अंगीरस ऋषि उत्तर देने लगे। ऋषि ने कहा, हे जिज्ञासुओं यह जो मानव शरीर है इस मानव शरीर में दो प्रतिक्रियाएं हो रही हैं, वही प्रतिक्रिया पृथ्वी के गर्भ में हो रही है, वही प्रतिक्रिया सूर्य की किरणों में हो रही है, वही प्रतिक्रिया चन्द्रमा की कांति में हो रही है और वहीं प्रतिक्रिया नाना लोक-लोकान्तरों में नृत्य कर रही हैं। यह जितना भी जगत् है इस सर्वत्रजगत् में दो ही क्रियाएं हैं। जब यह मानव किसी काल में संसार में आया तो इस मानव शरीर में एक मूल था और वह मूल दो भागों में परिवर्तित हो गया। वह दो भाग क्या हैं, ज्ञान और प्रयत्न। ज्ञान और प्रयत्न दो भाग हैं इसके। ज्ञान का माध्यम 'मन' और क्रिया का माध्यम 'प्राण', क्रिया के मूल में प्राण बन गया और ज्ञान के मूल में मन बन गया। जितना भी ज्ञान होता है वह मन के द्वारा होता है, जितनी क्रियाएं होती हैं वह प्राण के द्वारा होती हैं।

अंगिरस ऋषि कहते है, हे जिज्ञासुओ! मन के द्वारा एक कामना की उत्पत्ति होने लगी, क्योंकि वह ज्ञान का माध्यम था। जितना ज्ञान होता गया उतनी कामना बलवती बनती चली गयी। जितना वृक्ष बन गया है उतना ही

बलवती बन गया। वह जो वृक्ष बनने लगा तो वह जो प्रयत्न था, प्राण उसके मूल में था। उसके पाँच भाग बना दिये, कामना के द्वारा पाँच भाग बन गये। प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान अब जितना भी यह ब्रह्माण्ड था और मानव के शरीर में जो कार्य होने लगा, वह पाँच प्राणों के रूप में।

प्राण विवेचना

प्राण

सबसे प्रथम प्राण है। प्राण का कार्य नाभि केन्द्र से होकर ब्रह्मरन्ध्र के आसन को गति करके घ्राण के द्वारा बाह्य-जगत् में परिणत हो जाना अर्थात् प्राण नाभि-केन्द्र से चलता है। यह नाना प्रकार की ज्ञान वाहक नाड़ियों में से रमण करता हुआ बाह्य-जगत् में चला जाता है। अरबों-खरबों परमाणु बाह्य-जगत् में गति करते हैं। उनको लेकर आन्तरिक जगत् में प्रवेश करता है और आन्तरिक-जगत् से अरबों-खरबों परमाणु दुर्गन्धयुक्त बाह्य जगत् में त्याग देता है। आदान-प्रदान होने लगा। जितना भी यह जगत् है, इसमें जितना भी यह आदान-प्रदान हो रहा है, चाहे वह पृथ्वी के गर्भ में नाना धातुओं के रूप में हो रहा हो, पृथ्वी के गर्भ में चाहे जल को शक्तिशाली बनाता जा रहा है विभक्त क्रिया चल रही है। मुनिवरो! देखो वृक्षों के, वनस्पतियों के, सर्वत्र उसके मूल में एक रसों का आदान-प्रदान हो रहा है, वह आदान-प्रदान जैसे परमाणुवाद का श्वास प्रति-श्वास के द्वारा होता है। इसी प्रकार लोक-लोकान्तरों में भी उसी प्रकार की गतियां हो रही हैं। मेरे प्यारे! ऋषि कहता है प्राण आदान-प्रदान कर रहा है।

अपान

द्वितीय अपान प्राण है। नाभि से निचले विभाग को अपान माना गया है। अपान का समन्वय पृथ्वी से होता है। अपान क्या कर रहा है? जितनी भी चाहे वह सूर्य की किरणों से गतियां कर रही हैं। जितना भी ऊर्ध्व में कर्म हो रहा है वह सब अपान के द्वारा। अपान के द्वारा इस मानव शरीर में जो प्रतिक्रिया हो रही है। यदि अपान प्राण विकृत हो जाता है तो मानव का स्वास्थ्य भंग हो जाता है, स्वस्थ नहीं रहता परन्तु अपान अपना कार्य कर रहा है। अपान के मूल में मोह भी है, अपान के मूल में उत्पत्ति भी है, अपान के मूल में त्याग भी हैं जितनी वस्तु त्यागी जाती हैं वह अपान से त्यागी जाती हैं। शरीर से जब माता-पिता के हृदय में एक संकल्प जागता है कि मैं पुत्रयाग करना चाहता हूँ तो अपान में गति होती है और वह जो वनस्पतियों का रस है उन दोनों का मिलान हो करके पुत्रकी उत्पत्ति होती है। उससे याग होता है तो अभिप्राय क्या? वह अपान कहलाता है। जितना भी त्याग है वह अपान के द्वारा है, जितनी भी उड़ान गति है वह सब प्राण के द्वारा होती रहती है। ऋषि कहता है इसमें गुरुत्व है, आकर्षण शक्ति है यदि इस पृथ्वी में अपान शक्ति नहीं होगी तो सर्व पृथ्वियां सूर्य की किरणों के साथ सूर्य में आकर्षित हो जायेंगी। तो बेटा आकर्षण शक्ति अपान से मानी जाती है, अपान ही है जो मानव को दूर ले जाता है, गमन कराता है। अपान ही है जो मानव की सुरक्षा कर रहा है। अगर अपान प्राण नहीं होगा तो मानव का जो यह मानवीय शरीर है यह भी नहीं रहेगा। यह मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार जो अपने कारण में लय हो जाते हैं परन्तु प्राण ही जागरूक रहता है। एक अपान अपना कार्य कर रहा है, प्राण अपना कार्य कर रहा है वहाँ मनस्तत्व भी नहीं रहता परन्तु आत्मा का इसके साथ सन्निधान रहता है। सन्निधान मात्रसे ही यह अपनी गति करता है तो ऋषि कहता है अपान को शुद्ध रूप में रमण कराना है।

व्यान

तृतीय व्यान प्राण है। कण्ठ के ऊपर के विभाग का स्वामी व्यान प्राण है। मस्तिष्क, लघु मस्तिष्क, ऋणित मस्तिष्क भी इसी के अधीन कार्य कर रहे हैं। मानव के मस्तिष्क में अरबों-खरबों प्रकार की तरंगें व्यान प्राण के द्वारा होती हैं। हमारे इस मानव शरीर में 72 करोड़ 72 लाख 10 हजार 2 सौ नाड़ियां गिनी जाती हैं ये रक्त को

मानव के ब्रह्मरन्ध्र से लेकर के पगों तक जो गतियां हो रही हैं उसको संचालित कर रहा है रसों का शोधन हो रहा है, गतियां हो रही हैं, प्रत्येक नस-नाड़ी में व्यान प्राण गति कर रहा है, शक्ति प्रदान कर रहा है, संचालित कर रहा है। उनमें एक आभा उत्पन्न हो रही है। यह सर्वत्रव्यान प्राण कहलाता है। तो ऋषि कहता है व्यान प्राण सर्वत्रता में रमण करता है।

समान

चतुर्थ समान प्राण है जितना भी हम आहार करते हैं। अन्न इत्यादि का पान करते हैं समान प्राण उसका रस बना देता है और रस बना करके जितनी इन्द्रियां हैं इन सबको सामान्यता में पहुंचा देता है। इसमें वितरण करने की शक्ति हैं। तीनों प्राण-प्राण, व्यान और उदान वे जो बनाते हैं वे समान प्राण को दे देते हैं और समान प्राण शरीर की नस-नाड़ियों में उनके भाग के अनुसार वितरित कर देता है। इस समान प्राण से ही निर्माण होता है। इन्हीं पाँचों प्राणों से राष्ट्र का निर्माण होता है। मेरे प्यारे! वैश्य की उत्पत्ति कहाँ से होती है, समान प्राण से होती है। ऋषि कहता है, समान प्राण अपने में जो धारण कर लेता है वह प्रत्येक इन्द्रिय को अपना-अपना भाग परिवर्तित कर देता है अथवा प्रत्येक इन्द्रिय के भाग को पहुंचा देता है, वितरण करना इसका कार्य है।

उदान

पाँचवां उदान प्राण है, उदान प्राण का सम्बन्ध कण्ठ से रहता है। जिस समय प्राणान्त होने लगता है अथवा यह आत्मा शरीर को त्यागता है उस समय चित्त इस उदान प्राण से मिलान करता है और उदान उस चेतना से मिलान करके इस शरीर को त्याग दिया जाता है। और अब मुनिवरो! देखो, 'अब्रह्म व्रनिस्ताह' जितना भी ज्ञान का माध्यम है, जितना ज्ञान आता है वह जीवन और मृत्युपर्यन्त जितना भी ज्ञान-विज्ञान है उसकी तरंगें उदान में आती रहती हैं, उदान कण्ठ में रहता है। जिस समय आत्मा यह शरीर त्यागता है तो यह मन के मण्डल के साथ में आता है जिससे चित्त कहते हैं। चित्त नाम भूमिका का है, चित्त नाम अंकुरों के क्षेत्रमें है जहाँ मानव के शरीर में नाना अंकुर होते हैं, जन्म-जन्मांतरों के संस्कार होते हैं, करोड़ों जन्मों के संस्कार मानव के जीवन में निहित होते हैं। वह जो चित्त है उदान प्राण से मिलान करता है उसमें सूक्ष्म शरीर और उसी में कारण शरीर विद्यमान रहते हैं। आत्मा, मन दोनों उदान प्राण के ऊपर सवार हो करके शरीर को त्याग दिया जाता है। द्वितीय शरीरों को धारण करता रहता है जैसा उसका अन्तिम विचार होता है, उसके अनुसार जन्म धारण करता है। क्योंकि मन में चित्त का मण्डल रहता है तो ऋषि कहता है, हे मानव! अन्त में जो तेरा विचार होगा, जिस प्रकार का तेरा चिन्तन होगा उसी प्रकार की योनियां तुझे प्राप्त होंगी क्योंकि उदान प्राण का सम्बन्ध कण्ठ से रहता है।

इसके पश्चात् 'धिती सन्धनम् देवत् प्राणाः' पाँचों प्राणों को यह मन कार्य देता है और मन का कार्यवाहक यहाँ शान्त नहीं होता। मेरे प्यारे! तब यह पांच उप-प्राणों की उत्पत्ति हो गई। (1) नाग, (2) देवदत्त, (3) धनञ्जय, (4) कूर्म, (5) कृकल, पाँच उप-प्राण बन गये। जब यह पाँच उप-प्राण और बन गये तो इनको कार्यवाह दे दिया।

नाग

प्रथम उप प्राण-नाग को कहते हैं जब मानव को अति क्रोध आता है तो नाग प्राण का ऊर्ध्वामुख हो जाता है, ऊर्ध्वामुख हो करके जब अधिक क्रोध आता है तो अमृत भस्म हो जाता और उसका विष बन करके नाग प्राण उसको अपने में ग्रहण करने लगता है। नाग कहते हैं जो विष को शोषण करता है, विष जब अति बलवान हो जाता है तो यही विष नाना प्रकार के रोगों के मूल कारणों को उत्पन्न करता है। इसलिए वेद का ऋषि कहता है क्रोध न करो, प्राणों को विकृत न होने दो जिससे रुग्णता तुम्हारे शरीर में न आये।

देवदत्त

द्वितीय उप प्राण-देवदत्त कहलाता है जब क्रोध नहीं होता, जितना भी नाग प्राण शान्त रहता है, विष नहीं होता, उतना ही देवताओं के मार्ग को गति करता रहता है, देवताओं को प्राप्त होता रहता है तो ऋषि कहता है जब यह अपान विकृत हो जाए किसी काल में तो यह देवदत्त प्राण कार्य में लाता है।

धनंजय

तृतीय धनंजय उप प्राण-उसे कहते हैं जो सर्वत्रब्रह्माण्ड की आभा में रमण करने वाला है। जितना भी पृथ्वी का गर्भ है, जितना भी अन्तरिक्ष का गर्भ है, प्रत्येक लोक-लोकान्तरों का जो गर्भ है उसको जान लेता है, धनंजय प्राण के द्वारा। ऋषि कहता है, व्यान-प्राण में विकृतता आ जाये तो धनंजय उसके साथ में गति करता है।

कूर्म

कूर्म उप प्राण-वह कहलाता है जिसमें ब्रह्मवेत्ता की उत्पत्ति होती है ब्रह्मा में वह रमण करने लगता है।

कृकल

कृकल उप प्राण-उद्बुध अग्नि को उत्पन्न करके ध्रुव लोकों में ले जाता है। वेद का ऋषि कहता है मानव को स्थूल बनाना, सूक्ष्म बनाना यह कूर्म और कृकल दोनों प्राणों का कार्य है।

प्रत्येक प्राण के साथ एक-एक उप-प्राण की उत्पत्ति हो गई तो कार्यवाहक इसी मनीराम ने ज्ञान के द्वारा प्रदान कर दिया। जब प्रदान कर दिया तो मुनिवरो देखो इनका कार्य प्रारम्भ होने लगा। अब मेरे प्यारे! यह एक मानव के शरीर का निर्माण हो गया। पाँचों प्राणों का निर्माण हो गया है एक प्राण के दस भाग बन गये हैं। दस से विशेष प्राण के भाग नहीं बन सकते। मैंने बहुत पुरातन कल में कहा, इन दस प्राणों के विभक्त होने से ही दस रूपों में यह संसार रच गया और जितना ज्ञान और विज्ञान है इन दस ही प्राणों में रमण कर रहा है। इस प्रकार की प्रतिक्रियाएं परमाणुओं की अन्तरिक्ष में होती रहती है।

अब मुनिवरो देखो! मन को तो कार्य करना था, तो वह अंकुरित होने लगे। उसके पश्चात् मन के तो भाग हो नहीं सकते थे। यह पाँच ज्ञानेन्द्रियां और पाँच कर्मेन्द्रियों का निर्माण हो गया। अब यह बाह्य जगत् बन गया इस मानव शरीर का। यह आन्तरिक जगत् में था, प्राणों के रूप में था, परन्तु बाह्य जगत् हो गया इन्द्रियों का निर्माण हो गया। जब इन्द्रियों का निर्माण हो गया तो पाँच ज्ञानेन्द्रियां और पाँच कर्मेन्द्रियां बन गयी। वह जो ज्ञानेन्द्रियां थीं अब उनमें बेटा! रूप, रस, गन्ध, स्पर्श शब्द यह पाँचों विषय आ समाने लगे, यह इनका विषय बन गया। जब यह विषय बन गया तो अब इन इन्द्रियों में स्वार्थपरता आ गयी, मृत्यु के अन्धकार में जब यह इन्द्रियां आ गयी अब तक यह प्रकाश में थीं। परन्तु जब रूप आ गया, रस आ गया, गन्ध आ गया, स्पर्श आ गया, शब्द आ गया तो पुत्रो! उनमें स्वार्थपरता भी आ गयी। क्योंकि ध्वनियों में अशुद्धवाद हो गया, रूप में अशुद्धवाद आ गया। रसना में, गन्ध में, स्पर्श में, शब्दों में अशुद्धवाद आ गया। प्रत्येक इन्द्रिय में जब अशुद्धवाद आ गया तो स्वार्थपरता आ गयी। अब मानव मृत्यु से भयभीत होने लगा। प्रत्येक मानव चाहने लगा कि तेरी मृत्यु नहीं होनी चाहिए। यदि यह रूप रस गन्ध इत्यादि नहीं होते तो मृत्यु का भय नहीं हो सकता था। मृत्यु उसके मूल में कोई वस्तु ही नहीं थी। परन्तु जब यह मृत्यु से हृस होने लगा, ममता में आ करके मृत्यु उसे हृसने लगी। तो इस ममता के आने के पश्चात् काम, क्रोध, लोभ मोह और मद यह पाँचों विषय बन गये। यह मित्र और शत्रु बन गये। मित्रऔर शत्र ु के रूप में जब यह परिणत होने लगे तो एक और उत्पन्न हो गया इसका नाम तृष्णा कहलाया जाता है। मेरे प्यारे! इनके ऊपर एक तृष्णा है। तृष्णा इतनी बलवती बन गयी है। आज्ञा के अनुसार कार्य होता है तो मानव में अभिमान की उत्पत्ति हो गयी और यदि आज्ञा के अनुसार कार्य नहीं होता तो निराशा आ गयी, मृत्यु आ गयी, अन्धकार आ गया।

मेरे प्यारे मानव कहाँ चला गया कितना विशाल यह वृक्ष बन गया है। महर्षि त्र ेतकेतु अंगीरस ऋषि कहते हैं हे जिज्ञासुओं यह एक मानव का वृक्ष बन गया है। अब देखो! इस वृक्ष को समेटना है क्योंकि तृष्णा के आने पर एक मानव के पिता के दस पुत्रहैं, वह कहते हैं कि नगर में अग्नि प्रदीप्त करके आओ। वह अग्नि प्रदीप्त कर देते हैं तो अभिमान की उत्पत्ति हो गई और यदि आज्ञा के अनुसार दस पुत्रकार्य नहीं करते तो वहाँ निराशा आ गई, मृत्यु आ गयी। अंगीरस ऋषि ने कहा है ब्रह्म के जिज्ञासुओं, हे मानव दोनों ही तेरे लिए अन्धकार हैं। अभिमान भी मृत्यु है और निराशा भी मृत्यु है, दोनों ही मृत्यु कहलाती हैं।

अब बेटा! जिज्ञासुओं ने विचारा, चिन्तन किया। मानव-दर्शन को विचारा कि अब हम इसको कैसे समेट सकते हैं। वे राष्ट्र राष्ट्रों को त्याग करके भयंकर वनों में चले गए। भयंकर वनों में जाकर चिन्तन करना प्रारम्भ किया। सबसे प्रथम तृष्णा को त्यागने का प्रयत्न किया। जब तृष्णा को ऋषियों ने समेट लिया। तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद इत्यादियों पर अनुशासन होने लगा। अनुशासन होने के पश्चात् प्रत्येक इन्द्रिय का साकल्य बनाया गया। अब यहाँ आकर के ऋषि प्रत्येक इन्द्रिय का साकल्य बनाता है, जो उसका विषय है उस विषय को ज्ञानपूर्वक जान करके उसको आकुंचन में लाता है।

प्रकृति की पाँच गतियाँ

क्योंकि प्रकृति की पाँच प्रकार की गति कहलाती है। मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में कहा प्रकृति की पाँच प्रकार की गतियाँ हैं। 1. प्रसारण 2. गति 3. ऊर्ध्वा 4. ध्रुवा और 5. आकुंचन। तो ऋषियों ने इन्द्रियों के विषयों का आकुंचन किया। आकुंचन किया तो वहाँ योगी ने प्राणायाम किया। बेटा! संकल्प प्राणायाम किया जो मैंने कल उच्चारण किया था। संकल्प प्राणायाम करने से मेरे प्यारे संकल्प में यह जगत् कटिबद्ध हो गया। वह वृक्ष संकल्प में कटिबद्ध हो गया और संकल्प के द्वारा जब उन्होंने अग्नि प्रदीप्त प्राणायाम किया। यह भिन्न-भिन्न प्राणायाम करने से उन्होंने सबसे अन्तिम प्राणायाम केवल संकल्प प्राणायाम किया और संकल्प को भी त्याग दिया। देखो जब साकल्य बना करके इस हृदयरूपी गुफा में जहाँ चेतनरूपी आत्मा विद्यमान है जिसके मूल में मन और प्राण देखो ज्ञान और प्रयन्त दो भाग हो गये।

मुनिवरो देखो! उसके अन्ननाह में उसके यह साकल्य बन करके आहुति देने लगा, स्वाहा उच्चारण करने लगा 'ब्रह्मचरिष्यामि' ब्रह्मचर्य की गति ऊर्ध्वा बन गई। ध्रुवा से ऊर्ध्वा बन गई, अंकुरित न होकर के केवल ज्ञान में वह परिपक्व बन गया। उसके पश्चात् यह सब इन्द्रिय प्राणों में समाहित हो गई तो नाग, देवदत्त, धंनजय यह प्राण में समाहित हो गये और जब वह प्राण में समाहित होकर के प्राण और अपान इन दोनों का जब समन्वय हो गया, दोनों का मिलान हो गया, दोनों के मिलान होने के पश्चात् दोनों सूत्रएक मनके में आ गए। मन इसमें सिमट करके ज्ञान और प्रयत्न दोनों एक सूत्रमें आ गए। ज्ञान और प्रयत्न दोनों के एक सूत्रमें आने का नाम मोक्ष है और इनका वृक्ष बन जाने का नाम यह संसार है।

तो विचार क्या, संसार क्या है? संसार एक वृक्ष है। पाँचों प्राणों का, दसों प्राणों का, मन इसमें कटिबद्ध होने से एक वृक्ष बन जाता है। यह संसार बन गया और इस संसार को समेट करके, अपने में अनुभव करके ज्ञान और प्रयत्न दोनों का एक सूत्रमें आ जाना ही मोक्ष कहलाता है। बेटा! यह मैंने कुछ मानव दर्शन की चर्चाएं तुम्हें प्रकट कीं। विचार-विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें दर्शनों की चर्चा कर रहा था, मैं एक वेद-मन्त्रकी व्याख्या कर रहा था। मन्त्रकहता था ''प्राण ब्रह्मणों वृताम्देवाः मनस्त्वम् ब्रह्मणो वृतो देवा। मनस्त्वंम् जानाति गच्छतम्'' मेरे प्यारे यह वेद-मन्त्रों की कुछ आख्यायिकाएं हैं।

त्रेतकेतु अंगीरस मुनि ने कहा था कि हे जिज्ञासुओ तुम यह जान गये होंगे कि कैसे वृक्ष बनता है और कैसे

वृक्ष को समेट करके एक अंकुरित हो जाता है। गुण से गुणी कदापि पृथक् नहीं होता। इसलिए इस शरीर में जो चेतन रूपी आत्मा है इसके मूल में ज्ञान और प्रयत्न है, इसके संसार में लाते हो तो वह वृक्ष बन जाता है, अंकुरित हो करके मन और प्राण को एक सूत्रमें आते ही यह संसार सिमटकर तुम्हारे अन्तर्हृदय में प्रवेश कर जाता है।

यह है बेटा! एक यौगिक विषय। इसे हमारे यहाँ यौगिक विषय कहा जाता है। योगियों की विवेचना करके से, ऋषि-मुनियों की आभाओं को विचारने से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक मानव को प्राणायाम करना चाहिए। इस प्राण को और मन, को दोनों को एक सूत्रमें लाना है, दोनों को एक सूत्रमें लाने के लिए प्रयत्न करते रहेंगे। पति-पत्नी गृह में रहने वाले हैं यदि यह प्राणायाम करते हैं, तो उनका जीवन भी सफल है और मुनिवरो! देखो, जहाँ इस प्रकार की धाराओं का चिंतन करने में मानव लग लाता है, प्रत्येक प्राणी त्यागमय हो जाता है वहाँ राष्ट्र की भी आवश्यकता नहीं रहती। राष्ट्र तो बहुत ही निम्न श्रेणी की एक तरंग है, वह कोई ऊंची तरंग नहीं है, निम्न श्रेणी की तरंग है। यह समाज विकृत होने से ही इसकी उत्पत्ति होती है। इसे विकृत ही न होने दो।

तो मेरे पुत्रों! विचार-विनिमय क्या? आज का हमारा वाक्य क्या कह रहा है कि हम मानव दर्शन को जानने वाले बनें। बेटा! इस प्राण की चर्चा तो मैं कल भी तुम्हें प्रकट करूंगा। मेरा यह विषय शांत नहीं हुआ है अभी। मैंने एक वृक्ष को बनाया है और उस वृक्ष को बना करके, समेट करके जिसे ऋषि मोक्ष कहते हैं, ज्ञान और प्रयत्न में कारण रूप बन जाते हैं। बेटा! कल मुझे समय मिलेगा मैं स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर कैसे-कैसे प्राण की आभाओं में गति करता है, यह चर्चा मैं कल प्रकट करूंगा। आज का यह विचार समाप्त। मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं तुम्हें कल प्रकट करूंगा। कल बेटा! भगवान राम 12 कलाओं को जानते थे, उन 12 कलाओं में एक सूक्ष्म रहस्यतम सूक्ष्म शरीर और पृथ्वी के विज्ञान को जानते थे। कल में इस सम्बन्ध में कोई विवेचना प्रकट करूंगा, आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन होगा, इसके पश्चात् यह वार्ता समाप्त होगी। दिनांक : 03-05-80, स्थान : दुर्गयाना मन्दिर, अमृतसर।

७ सप्तम अध्याय बारह कलाओं के ज्ञाता श्रीराम 04 05 1980

जीते रहो! देखों मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भान्ति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चल जा रहे थे। यह भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहा है जिस पवित्रवेद-वाणी में उस मेरे देव को प्राण-स्वरूप माना गया है उस देव की महिमा का गुणगान गया जाता है। वह मेरा देव जो संसार का नियन्ता है अथवा नियामक है, निर्माण करने वाला है और इस संसार के एक-एक कण-कण में व्याप्त है वह परम महान् और विष्णु कहलाया गया है।

तो आओ मेरे पुत्रों! आज का हमारा वेद-मन्त्रक्या कह रहा है। क्योंकि प्रत्येक वेद-मन्त्रों में उस देव के ज्ञान और विज्ञान की विवेचना होती रहती है। हमारे यहाँ परम्परगतों से ही पठन-पाठन का क्रम है, क्योंकि वेदों की जो ध्वनि है अथवा उच्चारण करने के जो प्रकार है, वह भिन्न-भिन्न प्रकार माने जाते हैं। हमारे यहाँ वेदों के पठन-पाठन के प्रकार जैसे-जटा-पाठ, धन-पाठ, माला-पाठ, विश्व, उदात्त, अनुदात्त यह वेद-मन्त्रउच्चारण करने के प्रकार हैं। भिन्न-भिन्न प्रकारों से एक-एक वेद-मन्त्रकी ध्वनि होती है। एक मानव माला पाठ का वर्णन कर रहा है, माला पाठ से गान गा रहा है। हे मानव! तुझे गान तो गाना ही चाहिए। यदि तू गान नहीं गाएगा तो तेरे जीवन मे अधूरापन आ जाएगा, परन्तु तू जटा पाठ में उस अपने देव की महिमा को गान के रूप में परिणत करता चला जा।

प्रभु की नाना प्रकार की महिमाएँ हैं। उस प्रभु के राष्ट्र में नाना विद्याएँ हैं और जिस भी विद्या को तुम दृष्टिपात करोगे, उसमें अनन्तता तुम्हें दृष्टिपात आएगी। वह आनन्दवत् कहलाया जाता है। आओ मेरे पुत्रों! आज का हमारा वेद-मन्त्रजटा-पाठ की कुछ महिमाओं का वर्णन कर रहा था और कुछ माला पाठ का। मेरे आचार्यो ने एक समय कहा कि महाराज! यह माला पाठ क्या है? तो मैंने बहुत पुरातन काल में कहा था कि मनके हैं और सूत्रहैं। मनके सूत्रमें पिरोये जाते हैं, जब मनके सूत्रमें पिरोये जाते हैं तो वह माला बन जाती है। इसी प्रकार जो संसार है, यह जो नाना प्रकार की आकाश-गंगाओं वाला जगत् है जिस आकाश गंगा में नाना सूर्य कहलाते हैं, नाना बृहस्पति कहलाते हैं, नाना ध्रुव कहलाते हैं और एक आकाश-गंगा नहीं, अनन्त आकाश-गंगायें हैं।

लोको की माला

मेरे पुत्रों! नाना प्रकार के जो परमाणु गति कर रहे हैं वह उस चेतनामयी अर्थात् चेतना से पिराये उस सूत्रमें पिराये हुए यह मनके हैं और जब योगेश्वर शान्त मुद्रा में हो करके गान गाता है, अपने आत्म-चेतना के उद्गम विचारों को, उद्गान को जब उस सूत्रमें पिरो देता है तो मानव धन्य हो जाता है। वह मानव कितना सौभाग्यशाली है। बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है, कई काल में तुम्हे प्रकट भी कराया, एक समय महर्षि मार्कण्डे मुनि महाराज अपने आसन पर भयंकर वनों में विद्यमान थे। वह ऋषि माला पाठ में गान गा रहा है। मेरे पुत्रो! उनके समीप कोई मनुष्य नहीं था। उस गान को श्रवण करने के लिए मृगराज, सर्पराज, सिंहराज एक पंक्ति में विद्यमान हो करके श्रवण करने लगे। विचार आता रहता है कि हिंसक प्राणी भी तो उसी सूत्रके मनके हैं जिस सूत्रमें यह लोक-लोकान्तर पिरोये हुए हैं। वही तो सूत्रसर्वत्रहै। उस सूत्रका नामकरण क्या है? वह सूत्रजिसमें पिरोये हुए हैं, लोकों की माला बनी हुई है।

ब्रह्मचारी कवन्धि से याज्ञवल्क्य मुनि कहते हैं कि मेरी जो विज्ञान शाला है इसमें एक आकाश-गंगा दृष्टिगत नहीं आती। जिस एक आकाश-गंगा में अरबो-खरबों सूर्य भ्रमण करते हैं परन्तु विज्ञानशाला में नाना आकाश-गंगाएं सूत्रमें पिरोयी हुई दृष्टिपात हो रही हैं। मेरे पुत्रो! उस सर्वत्रब्रह्माण्ड का एक ही सूत्रहै, जिस सूत्रमें प्राणीमात्रअपने

को अपने में ही दृष्टिपात करता है। आओ मेरे प्यारे! मैं तुम्हें दूर न ले जाऊं, यह तो विचारो का भंयकर वन है। मैं तुम्हे विज्ञान में ले जाना नहीं चाहता हूँ। एक-एक आकाश-गंगा के जब मण्डलों की गणना करने लगूंगा तो तुम आश्चर्य में हो जाओगे। मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में कहा है आकाश-गंगा ही नहीं गन्धर्व लोक भी विद्यमान है और इन्द्र लोक भी और वह सर्वत्रएक सूत्रमें पिरोये हुए हैं, उस माला को कौन धारण करता है बेटा! भौतिक विज्ञानवेत्ता तो शान्त हो जाता है परन्तु जो योगी होते हैं, जो मन और प्राण को एक सूत्रमें पिरोने वाले होते हैं वहीं लोक-लोकान्तरों की माला को धारण करते हैं। उनको ही अधिकार है, उस माला को धारण करने का।

तो आओ मेरे पुत्रो! आज मैं इन वाक्यों से, तुम्हें वहीं ले जाने के लिए आया हूँ जहाँ प्राणों की विवेचना हो रही थी कुछ प्राण सूत्रकी विवेचना हो रही थी। यह विचार भी प्राण-सूत्रकी ही चर्चा के अन्तर्गत आ जाते हैं, इसी में प्रवेश कर जाते हैं। इससे पूर्व शब्दों में बेटा! मानव शरीर का कैसे वृक्ष बनता है और कैसे अंकुर बनता है। अंकुरों में एक चेतना है और उसमें से दो विभक्त क्रियायें उत्पन्न होती हैं जिसको हम ज्ञान और प्रयत्न कहते हैं, ज्ञान और प्रयत्न के मूल में यह मानव शरीर का एक वृक्ष बन जाता है। इस वृक्ष की चर्चायें मैंने कई काल में और इससे पूर्व भी प्रकट की। आज का हमारा वेद-मन्त्रक्या कह रहा था। हम इस वृक्ष को समेटना चाहते हैं, आकुंचन करना चाहते हैं। जितना भी विज्ञान है वह पंचीकरण में माना गया है। सृष्टि में प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल के वैज्ञानिकों को, जब उनके विचारों को एकत्रित करोगे तो प्रकृति की पाँच ही गतियों की गणना हो सकेगी।

मेरे प्यारे! पाँच प्रकार की गति तुम्हे दृष्टिगत आएंगी। सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान काल तक नाना वैज्ञानिक और नाना योगेश्वर हुए। परन्तु जब उन योगियों के वाक्य आते हैं तो वे भी पंचीकरण को ही अनुशासन में लाते हैं। वह पाँच क्या है, पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ हैं। ज्ञान इन्द्रियों में कर्म-इन्द्रियाँ उनका उपकरण बनती हैं। उनका कोई महत्व नहीं है। केवल उपकरण के ही रूपों में रहती हैं। जैसे प्राण पाँच हैं, पाँच प्राण उपकरण कहलाते हैं परन्तु इसकी आभा में, इसी सन्दर्भ में हम इन प्राणों को ऊर्ध्वा में ले जाते हैं। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही त्रेताकाल और द्वापरकाल दो काल हुए हैं, इन दोनों काल में दो महापुरुष हुए हैं जिन्होंने बारह कलाओं को जाना है और षोडश कलाओं को जाना है। बारह कलाओं को जानने वाले भगवान राम थे और षोडश कलाओं के जानने वाले भगवान कृष्ण थे। मेरे पुत्रो! तुम्हें प्रतीत होगा यह बारह कलायें क्या हैं?

जावाला पुत्र सत्यकाम के द्वारा यह षोडश स्मरण हो गई थी। जब पिप्पलाद ऋषि के यहाँ जिज्ञासु पहुंचे तो उन्हें यह षोडश कलाओं का ज्ञान हो करके केवल ऋत् और सत् में रमण करते थे। आज मैं विवेचना नहीं करूंगा पुत्रो! केवल विचार देने आया हूँ, परिचय देने के लिए आया हूँ वह परिचय क्या है? वह षोडश कलायें हैं, हमारे यहाँ सबसे प्रथम प्राचीदिक् आता है, दक्षिणादिक् और प्रतीचिदिक् उदीचिदिक् आता है, यह चार कलायें हैं। कलाओं का अभिप्राय पूर्व दिशा से अग्नि का भण्डार, अदिति का प्रकाश आता है, सूर्य उदय में आना शुरू होता है। पश्चिम दिशा में अन्न का भण्डार रहता है और दक्षिणाय में विद्युत की धारायें और उदीची से विद्युत की धाराओं की तरंगें दक्षिणादिक् में ओत-प्रोत हो जाती हैं। वह सर्वत्रविज्ञान है।

तुम्हे प्रतीत होगा बेटा! एक समय जब भगवान् राम को वन प्राप्त हो गया था। तो मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। महर्षि लोमश इत्यादि उनके समीप भयंकर वनों में विद्यमान थे। दण्डक वनों में प्रातः कालीन यज्ञ करते थे। प्रातःकालीन देवपूजा करते थे। जैसे समुद्र कला थे, परन्तु देखो सूर्यकला, चन्द्रकला यह सर्वत्रकलाओं में परिणत तत्वावंगअस्त यह कला कहलाती हैं। इन कलाओं को दृष्टिपात करने वाले भयंकर वन में एक समय यह विचार कर रहे थे, उदीची में विद्युत का भण्डार है और यह दक्षिण में ओत-प्रोत हो जाता है। उत्तरायण से चला और दक्षिण में ओत-प्रोत हो जाता है। मेरे प्यारे देखों यह क्या है? विचारा गया कि वह जो प्राण रूपी आभा है

इस प्राण रूपी आभा पर जब शब्द आरूढ़ हो जाता है तो यह शब्द व्यापक बन जाता है। इस शब्द में व्यापकवाद आ जाता है क्योंकि यही शब्द है जो विद्युत की तरंगों पर विद्यमान हो करके यह उदीची से दक्षिण को प्राप्त हो जाता है और दक्षिण में होता हुआ, यह अन्तरिक्ष में ओत-प्रोत हो जाता है और वहाँ यह अवस्थित हो जाता है।

बडवानल अग्नि

वेद का ऋषि कहता है कि शब्द उच्चारण करते ही एक क्षण समय में यह पृथ्वी की 117 परिक्रमा कर जाता है। एक ही शब्द, शब्द का आकार बन गया है परन्तु वह प्राण की आभा पर, प्राण की तरंगों पर विद्यमान हो करके उसमें कितनी गति आ जाती है? यदि प्राण नहीं होगा तो शब्द में गति नहीं होगी। वेद का आचार्य कहता है यह जो प्राण है इस प्राण का समन्वय जब समुद्रों से होता है और समुद्रों में जा करके जब यह प्राण विकृत हो जाता है तो मुनिवरो! जल को भी यह अपने में धारण कर लेता है और वहां प्राण की रश्मियों का सूर्य से समन्वय होता रहता है। सूर्य से समन्वित होता है और सूर्य ग्रीष्म ऋतु में जैसे जल को अपने में शोषण कर लेता है इसी प्रकार वहीं प्राण स्वरूप समुद्र में परिणत हो जाता है तो समुद्र में बेटा! अग्नि को प्रभावित कर देता है। अग्नि प्रदीप्त हो जाती है जलों में। उसको बड़वानल नाम की अग्नि कहते हैं यह बड़वानल नाम की अग्नि क्या करती है? समुद्रों के जल को सूर्य की किरणों में आभायित कर देती है और आभायित करके यदि वह बड़वानल नाम की अग्नि जल को कृतियों में भ्रमण कराती है तो जलों के, समुद्रों के तटों पर रहने वाले प्राणी उस बड़वानल नाम की अग्नि में भस्म हो जाते हैं। तो यह मेरे देव का कितना उज्ज्वल विज्ञान है। यह कैसे शान्त होगा? मेरे प्यारे! अन्तरिक्ष में जब इन प्राणों का, शब्दों का, दोनों का समन्वय होता है तो इस अन्तरिक्ष के परमाणुओं में अग्नि प्रदीप्त हो जाती है, जैसे वन में एक काष्ठ दूसरे काष्ठ से समन्वित हो करके वनों में अग्नि प्रदीप्त कर देता है। इसी प्रकार यह जो अन्तरिक्ष है इसमें परमाणुओं के संघर्ष होने पर जब अग्नि प्रदीप्त हो जाती है तो अन्तरिक्ष में भंयकर अग्नि प्रदीप्त हो करके और वहीं अग्नि देखो अनावृष्टि, अतिवृष्टि के रूप में प्राणीमात्र को दैवी प्रकोपों में परिणत कर देती है।

शब्दों का संघर्ष

बेटा! तुम्हें ज्ञान होगा, तुम्हें स्मरण होगा जब उद्दालक गोत्र के ऋषि सम्भालिक ऋषि महाराज का रेवक मुनि महाराज के साथ मिलान हुआ तो उन्होंने अपनी योग स्थली पर विद्यमान हो करके यही निर्णय कराया कि इस अन्तरिक्ष में शब्दों की, प्राणों की, दोनों की आभा से अग्नि प्रदीप्त हो जाती है, परमाणु आपस में धृष्ट होने लगते हैं तो वे अतिवृष्टि के रूप में, अनावृष्टि के रूप में परिणत हो जाते हैं। तो ऋषि कहते हैं कि अग्नि कैसे शान्त होगी? यही अग्नि मानव के शरीर में प्रविष्ट हो जाती है जो अग्नि बाह्य जगत् में, ब्रह्माण्ड में कार्य कर रही है, जो प्राणमयी वहीं समुद्रों में बड़वानल नाम की अग्नि बन कर जलों को विकृत कर रही है। यही मेरे प्यारे! इस मानव के शरीर में भी उसी प्रकार की प्रतिक्रिया होती है।

यह शब्दों का संघर्ष किस काल में होता है? जिस काल में, समाज में मिथ्यावादी पुरुष हो जाते हैं और जितने भी मिथ्यावादी, अभिमानी, विषैले प्राणी हो जाते हैं इनकी विचारधारा, इनका विषैलापन अन्तरिक्ष में प्रवेश करता है तो परमाणुओं के द्वारा और संग्राम होता रहता है एक समय ऐसा भयंकर संग्राम होता है कि दैवी प्रकोप के रूप में वह मानव के समीप परिणत हो जाती है। मैं एक आख्यायिका अर्थात् कथा प्रकट किया करता हूँ बहुत पुरातन काल की वार्ताओं में बेटा! एक आलंकारिक चर्चा है।

एक समय देखो, अतिवृष्टि हो गई। जब अतिवृष्टि हुई तो प्रजा का सर्वत्र विनाश हो गया। द्रव्य से, गृह वंचित हो गए तो प्रजा ने अपना एक समाज एकत्रित किया और समाज ने कहा, चलो प्रजापति के द्वार पर चलते हैं। हमारे लिए ऐसा क्यों हुआ? तो देखो, वह भ्रमण करते हुए प्रजापति के द्वार पर पहुंचे। प्रजापति ने कहा, कहो

प्रजाओं, तुम्हारा कैसे आगमन हुआ? उन्होंने कहा कि महाराज! हम इसलिए आए है कि अतिवृष्टि हो गई है, अतिरूप में हुई है। हम यह जानना चाहते हैं कि ऐसा क्यों हुआ? इसके मूल को जानना चाहते हैं। प्रजापति ने कहा, यह वृष्टि कहाँ से हुई। प्रजा ने कहा, मेघ-मण्डलों से हुई है। मेघों की उत्पत्ति हुई और उससे वृष्टि हो गई। तो मुनिवरो! कहते हैं कि प्रजापति ने मेघों को एकत्रित किया, निमन्त्रण दिया। अब निमन्त्रण के अनुसार जब वह पहुंचे। प्रजापति ने कहा कि हे प्रजा 'ब्रहे मृताम् मेघा'। हे मेघ! तुमने प्रजा के विनाश के लिए अतिवृष्टि क्यों की? उन्होंने कहा, प्रभु! हम इसमें दोषी नहीं है हमें तो आज्ञा प्राप्त हुई, हमने वृष्टि की। आज्ञा तुम्हें कहाँ से मिली? उन्होंने कहा कि इन्द्र से। तो मेरे प्यारे! प्रजापति ने इन्द्र को निमन्त्रण दिया और इन्द्र से कहा, दोषी हे इन्द्र! यह तुमने बिना समय वृष्टि क्यों की, क्यों प्रेरणा दी है मेघों को? उन्होंने कहा, प्रभु! मैं इसमें दोषी नहीं हूँ। उन्होंने कहा, कौन है? महाराज! मेरे से तो शचि ने कहा था। प्रजापति ने बेटा! शचि को निमन्त्रण दिया और शचि से कहा, हे शचि! तुमने बिना समय के इन्द्र को प्रेरणा दी और इन्द्र ने मेघों को प्रेरित किया और वृष्टि हो गई, प्रजा का विनाश हो गया है। शचि बोली, प्रभु! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। मैं तो निर्दोष हूँ, मेरे से तो आदित्य ने कहा था। मेरे प्यारे 'आदित्याम् ब्रह्मा पुत्रो देवाः', कहते हैं आदित्य को निमन्त्रण दिया और आदित्य से कहा, हे आदित्य! यह तुमने बिना समय के वृष्टि क्यों कराई? यह समुद्रों को प्रेरणा क्यों दी? उन्होंने कहा, प्रभु! मेरा कोई दोष नहीं है। यह पृथ्वी पापों से सन जाती है। इस पृथ्वी ने कहा कि वृष्टि होनी चाहिए। अब प्रजापति ने बेटा! पृथ्वी को निमन्त्रण दिया और पृथ्वी से कहा, हे पृथ्वी! यह तुमने बिना समय के वृष्टि की इच्छा क्यों प्रकट की? उन्होंने कहा, प्रभु! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है! मेरे ऊपर जब यह प्रजा पाप-कर्म करती है तो मै क्या करूं। मेरे ऊपर उन्होंने पाप-कर्म किया। मैं पापों में सन जाती हूँ, उस समय मेरी प्रबल इच्छा होती है। मैंने अपनी प्रेरणा सूर्य आदि को प्रदान की। आदित्य ने वही प्रेरणा समुद्र को प्रदान की। समुदां ने वहीं प्रेरणा शचि को दी और शचि ने वही प्रेरणा इन्द्र को दी और वहीं प्रेरणा मेघों को दे करके मेघों से वृष्टि हो गई और वह जो वृष्टि हुई है वह जब नदियों के रूप में समुद्रों में चली गयी और प्रजा ने अपने किए हुए पाप-पुण्य कर्मों का फल भोग लिया। तो यह क्या है? यह सर्वत्र मैंने तुम्हें एक आख्यायिका-कथा प्रकट की। इससे विचार आता है कि जब मानव के प्राणों में विकृति आ जाती है तो मेरे प्यारे! यह मेघ क्या है? यह जलों की आभा हैं। इन्द्र नाम वायु को कहा गया है। शचि नाम विद्युत का है और आदित्य नाम सूर्य का है। यह सर्वत्र विचार जब एक आभा में कटिबद्ध हो समुद्रों में परिणत हो जाते हैं। तो इसमें यह प्रतीत होता है, हे मानव, तू इस संसार में आया है, प्रभु की सृष्टि में आया है, तुझे महान् और पवित्र कर्म करना है, तुझे अपने मानवत्व को ऊंचा बनाना है।

प्राण चिकित्सा

मैंने कई काल में तुम्हें कहा था मानव नाना प्रकार की कुण्ठाओं से ग्रस्त हो जाता है, नाना कारण इसके समीप आ जाते हैं। मेरे पुत्रो! विचार आता है कि प्राणी उसके निवारण के लिए नाना प्रकार की औषधियों का आश्रय लेता है नाना प्रकार की आभा में रमण करता है। परन्तु हमारे ऋषि-मुनियों ने, आचार्यो ने मेरे पुत्रो! एक प्राण चिकित्सा का वर्णन किया है। उन्होंने कहा कि मानव को प्राणायाम करना चाहिए। जो प्राण विकृत हो जाता है, इस बड़वानल नाम की अग्नि के रूप में परिणत हो जाता है। कहीं अणु परमाणुओं के रूप में समरस हो जाता है, उससे दैवी प्रकोप होते रहते हैं, जैसे गृह को कलह बनाना, गृह में नाना प्रकार की मृत्युमयी परमाणुओं की उत्पत्ति हो जाती है। इसी प्रकार मेरे पुत्रो! आचार्यजनों ने अपनी ऊर्ध्वा घोषणा से कहा है। कि हे मानव! तेरा यह शरीर रुग्ण हो जाए, प्राणों के विभक्त होने से मन में नाना प्रकार की कामनाएं होने से, जब यह 'मनः प्रमाण वृति देवः' जब यह मन अब्रहि मन और प्राण जिस मात्रपितस्तोः नाना प्रकार की औषधियों को क्यों पान करता है?

क्योंकि वहाँ प्राण नहीं पहुंच पाता इसलिए औषधियों का आश्रय लेना होता है। परन्तु वहाँ का रुग्ण शान्त तब तक नहीं होता जब तक प्राण नहीं पहुंच पाता। तो ऋषि-मुनियों ने कहा है कि प्राण और अपान दोनों का समन्वय किया जाए, दोनों का एकीकरण किया जाए जिससे सर्वत्र शरीर में प्राण की प्रतिक्रिया हो, तो इसलिए आचार्यो ने प्राणायाम का वर्णन किया है।

हमारे शरीर में अग्नि विशेष आ जाए तो सतो-पिप्पलादी हमें प्राणायाम करना चाहिए जिससे देखों शीतलता आए। उस प्राण का सम्बन्ध चन्द्रमा से है यह चन्द्रमा के परमाणु वहाँ आने प्रारम्भ हो जाएंगे। यदि यह अग्नि मन्द हो गई है, जल तत्त्व विशेष हो गया है तो उस काल में सूर्य प्राणायाम करना चाहिए अर्थात् दाई नासिका से श्वास लेकर, रोककर फिर बाई से निकालना चाहिए। जिसे अग्नि प्रदीप्त प्राणायाम कहते हैं। अग्नि को प्रदीप्त किया जाता है वह प्राणायाम कैसे किया जाता है? देखो! प्राण और अपान को हम दोनों को एकीकरण में लाये। चन्द्र प्राणायाम को बाह्य जगत् में और (चन्द्र प्राणायाम सूर्य से उलटा है) सूर्य को आन्तरिक जगत् में प्रवेश कराते हुए, उससे शरीर की अग्नि प्रदीप्त हो जाती है, अग्निमय बन जाता है। एक प्राणायाम ऐसा होता है जिससे मानव के शरीर में आनन्दकारी परमाणु समाप्त हो जाते हैं। वह अनर्थकारी परमाणु कैसे होते हैं? मेरे प्यारे! जो-सन्ताना उत्पतानि गच्छताहम!' जिसको मातायें किया करती हैं। माताओं को प्राणायाम करना चाहिए, 'थून्ट अन्नवासनीः सवस्यतानि गच्छम् ब्रहिवृतानि' वह सूर्य और चन्द्रमा की तरंगों को अपने में ले करके चन्द्र प्राणायाम करना और प्रातः में सूर्य और सायंकाल को चन्द्र, यह दोनों प्राणायाम रोगों को समाप्त कर देते हैं। यह प्राण-चिकित्सा हमारे यहाँ परम्परागतों में रही है। प्राण-चिकित्सा से हम किसी भी रोग को शान्त करना चाहते हैं तो वहाँ प्राण को ले जाये, मन और प्राण जब दोनों मिलान में, सूत्र में आ जाएंगे तो हम अपने महान् रोगों को समाप्त कर सकते हैं। रहा यह कि मन ओर प्राण दोनों को अपने संयम में, सूत्रों में लाना यही प्राण-चिकित्सा कहलाती है। हमारे यहाँ कई प्रकार की चिकित्साएं हैं। प्राण-चिकित्सा है, नाना प्रकार की औषधि-चिकित्सा है और इन्हीं चिकित्साओं के साथ मानव अंग को दूर कर देते हैं। अंग को भिन्न-भिन्न कर देना और उनको उसी प्रकार देखो औषधियों का लेपन करके उसे विशुद्ध रूप से उस अंग को सक्रिय कर देना।

तुम्हें स्मरण होगा राजा रावण के यहाँ उनकी चिकित्साशाला में अश्विनी कुमार थे जो महात्मा भुंजु के पुत्र कहलाते थे। सुधन्वा वैद्यराज थे जो औषध विज्ञान को जानते थे। देखो, हृदय विज्ञान को जानने वाले अश्विनी कुमार थे। जब महर्षि कुकुट मुनि महाराज उनके द्वार पर पहुंचे तो अश्विनी कुमारों ने कहा था कि आयुर्वेद में, आयु में इतनी गति है कि हम मानव के हृदय को और शरीर को, दोनों को पृथक्-पृथक् कर देते हैं। और छः मास तक औषधियों में नियुक्त कर देते हैं और छः माह के पश्चात् दोनों का समन्वय करके गति प्रदान कर देते हैं उसमें गति आ जाती है। मानव ज्यों का त्यों स्थिर हो जाता है। तो परिणाम क्या? देखो, विचार यह कि हमारे यहाँ प्राण को जानना, प्राण को अपने तक ही नहीं इस ब्रह्माण्ड के प्रांगण में भी दृष्टिगत करना है।

आओ मेरे प्यारे! आज में कोई विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ। केवल परिचय देने के लिए आया हूँ और वह परिचय क्या है? यह तो विचारों का वन है मुझे समय मिलेगा तो मैं राम की बारह कलाओं का समय-समय पर वर्णन करता रहूँगा। एक-एक कला के उच्चारण करने में समय की आवश्यकता होती है देखो, ध्रुवा, ऊर्ध्वा, छः कलाएं तो यह मानी जाती हैं। एक सूर्य कला, चन्द्र कला, मन कला, अग्नि कला, समुद्र कला और द्यौ कला इन बारह कलाओं को भगवान् राम अच्छी प्रकार जानते थे। इसमें वह सदैव संलग्न रहते थे। वशिष्ठ मुनि महाराज के द्वारा उन्होंने इन नाना विद्याओं को धारण किया। भारद्वाज मुनि के यहाँ पृथ्वी कला को अच्छी प्रकार जान लिया था। देखों हमारे यहाँ ज्ञान और विज्ञान से गुथा हुआ यह जो जगत्

है यह विशाल है, यह महान् है। वह एक ही सूत्र में पिरोया हुआ है, इस को प्रणव कहते हैं। उस सूत्र में पिरोया हुआ वह जगत् है जो हमें दृष्टिगत आ रहा है। इसी के अन्तर्गत सर्वत्र ज्ञान और विज्ञान आभा में रहने वाला है। हमें ज्ञान और विज्ञान को जानते हुए इस संसार सागर से पार होना है।

आओ मेरे प्यारे! आज का हमारा यह विचार क्या कह रहा है? हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गाते हुए हमें इस संसार से पार होना चाहिए। यह जो संसार है यह नाना प्रकार की तरंगों वाला है। कहीं मान की तरंगें आ रही हैं, कहीं अपमान की तरंगें आ रही हैं। हे मानव! तू दोनों तरंगों को अपने से धारण कर और दोनों को सामान्यतया स्वीकार कर क्योंकि इस प्रभु के राष्ट्र में हम आए हैं और प्रभु के राष्ट्र में कोई बुद्धिमान नहीं, कोई वैज्ञानिक नहीं है। प्रभु का राष्ट्र एक महान् है। प्रभु सर्वत्र ज्ञान और विज्ञान के भण्डार हैं। अनन्त उसके राष्ट्र में विद्यायें हैं। जो यह कहता है कि मैं सर्वत्र विद्याओं को जानता हूँ वह नहीं जानता और जो यह कहता है मैं कुछ नहीं जानता वह कुछ अनुसन्धान करता है। उसे जानने की जिज्ञासा है। वह प्रभु के राष्ट्र में, महत्ता में रहता है।

विचार क्या? मैं इन कड़ियों का मिलान करना चाहूँगा कि आध्यात्मिकवाद इसमें कैसे प्रवेश हो रहा है? हमारे यहाँ दो प्रकार के प्राणी हैं। एक जो विज्ञान में रत रहना चाहते हैं। उसी में वह चले जाते हैं और वह ज्ञान रूपी प्रकाश में रमण करते रहते हैं। एक मानव वह जो भौतिक विज्ञान से आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करना चाहते हैं। आध्यात्मिकवाद क्या है? बेटा! प्रभु नम्र है, प्रभु विज्ञानमय स्वरूप है, प्रभु प्रकाशमय स्वरूप है, वह प्रभु के राष्ट्र में जाना चाहता है क्योंकि प्रभु के राष्ट्र में रात्रि नहीं होती, प्रभु के राष्ट्र में रात्रि और दिवस नहीं होता। वहाँ सदैव प्रकाश रहता है, प्रभु के राष्ट्र में आलस्य और प्रमाद नहीं रहता। वहाँ अज्ञान भी नहीं रहता और जहाँ अज्ञान नहीं रहता वहाँ ज्ञान रहता है तो वहाँ मृत्यु भी नहीं रहती और जहाँ मृत्यु नहीं रहती वहाँ रात्रि दिवस और काल भी नहीं रहता। वाह रे मेरे प्यारे प्रभु! तू कितना महान् वैज्ञानिक और राष्ट्रपिता है कि तेरे राष्ट्र में विडम्बना ही नहीं है वह मृत्यु से पार हो गया है, वह जो प्राण है जब यह शरीर में वास करती है तो प्राण है, जब वह मृत्यु से पार हो जाती है तो वायु बन जाती है। वह प्राण इन्द्रियों का स्वरूप वायु रूप में परिवर्तित हो जाता है।

व्यापक दृष्टि

मेरे प्यारे! व्यापकवाद आ गया है तो मुनिवरों! हम प्रभु के राष्ट्र में पहुंच, प्रभु के राष्ट्र की हम कल्पना करें। रात्रि और दिवस को हम यहीं तक सीमित न रहने दें। आलस्य और प्रमाद को हम त्यागने वाले बनें, वहाँ सदैव मृत्यु से पार होने की वार्ता प्राप्त होती है और यह जो संसार है वह मान-अपमान वाला जगत् है। मान-अपमान यह जगत् वाले ही करते हैं परन्तु प्रभु के राष्ट्र में मान और अपमान भी नहीं है, क्योंकि जब वहाँ आलस्य और प्रमाद नहीं है, विडम्बना नहीं है, रात्रि अन्धकार नहीं है, अज्ञान नहीं है तो वहाँ मान और अपमान भी नहीं रहता।

मेरे पुत्रों, आज इस सूत्र में कुछ मनके रह गए, एक त्वचा रह गई है और द्वितीय रूपों में कर्मेन्द्रिय रह गई हैं इनकी विवेचना आगे समय मिलेगा करेंगे। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या कि हम प्राणायाम करें, रुग्णों को समाप्त करें, वाणी से सत्य उच्चारण करें जिससे वायुमण्डल और गृह पवित्र बन जाए। आज के विचार देने का अभिप्राय हमारा यहीं कि हम मान-अपमान की आभा में, अग्नि में अपने को न ले जायें। हम प्रभु के राष्ट्र की अग्नि का विचार करके सदैव वाणी को यथार्थ रूपों में, शब्दावलियों में, यथार्थ में, वायुमण्डल को पवित्र बनाते रहें और देखों! अणु, महाणु, त्रसरेणु, महात्रसरेणु, पाचाणु, चन्द्राणु नाना प्रकार के इन परमाणुओं को जानने के लिए हमें विज्ञान, प्रभु जो वैज्ञानिक है, उसका आश्रय लेना होगा, उसका आश्रय ही चला गया तो अभिमान आ जाएगा, उसका आश्रय नहीं त्यागना चाहिए। एक मानव परमाणुओं को जानता जा रहा है और प्रभु

का आश्रय उसने लिया नहीं, तो उसे अभिमान आ जाएगा। अभिमान आ जाएगा तो देखो! राष्ट्र में अग्नि प्रदीप्त हो जाएगी। राष्ट्र में अग्नि प्रदीप्त होने से यह समाज समाप्त होने लगेगा, रक्तभरी क्रान्तियां आ जाएंगी। तो इसलिए हमें अणुयों को जानना चाहिये में इसका विरोधी नहीं। यन्त्र होने चाहिएं, यन्त्रों पर विद्यमान हो करके राजा सूर्य लोकों तक गति करने वाला हो। देखो यन्त्रों पर विद्यमान हो करके वैज्ञानिक चन्द्रमा में ही गति नहीं, मेरे पुत्रो! तुम्हें स्मरण होगा मैंने कई काल में वर्णन भी कराया, हमारे यहाँ ब्रह्मचारी सुकेता गार्ग्य जब महर्षि भारद्वाज मुनि की यज्ञशाला में थे, अणु-परमाणु को जान करके वे एक यन्त्र पर विद्यमान हुए। उड़ान उड़ी, चन्द्रमा में चले गये, वहाँ से उड़ान उड़ी मंगल में चले गए, मंगल से उड़ान उड़ी शुक्र में चले गए, शुक्र से उड़ान उड़ी तो बुध में चले गये। बुध से उड़ान उड़ी तो आसुरी लोकों में चले गये। बहत्तर लोकों का भ्रमण करके पुनः यान पृथ्वी पर आता रहा है।

प्रभुमय विज्ञान

मेरे पुत्रो! देखो यह जानना कोई आश्चर्य नहीं है। परन्तु प्रभु का आश्रय होगा तो अभिमान नहीं होगा। उसमें अग्नि प्रदीप्त नहीं होगी और यदि केवल विज्ञान ही रह गया, आध्यात्मिकवाद नहीं रहा, प्रभु का आश्रय नहीं रहा, तो उससे क्या होगा। विज्ञान का दुरुपयोग होगा और विज्ञान के दुरुपयोग होने से उसमें मेरी पुत्रियों के नृत्य होने प्रारम्भ हो जाएंगे। उन नृत्यों के होने से छात्र और छात्राओं का ब्रह्मचर्य भ्रष्ट हो जाएगा और ब्रह्मचर्य के भ्रष्ट होने पर, अधिकार की पुकार होने पर रक्तभरी क्रान्तियां आ जाएंगी, राष्ट्र समाप्त हो जाएगा। इसीलिए वेद का ऋषि कहता है कि विज्ञान होना चाहिए परन्तु विज्ञान में प्रभु का आश्रय होना चाहिए जिससे विज्ञान का दुरुपयोग न हो। ब्रह्मचर्य छात्र और छात्राओं का समाप्त न हो जाए, उसमें विकृति न आ जाए। बेटा! विकृति आ गयी तो समाज में अधिकार रह जाएगा, कर्त्तव्यवाद समाप्त हो जाएगा और कर्त्तव्यवाद के समाप्त होने का अधिकर भी अग्नि में परिणत हो जाएगा। तो बेटा! मैं यह विचार इसलिए दे रहा हूँ कि हमें प्रभु का आश्रय लेना चाहिए। क्योंकि उसमें हमें अभिमान नहीं आएगा। उसके विज्ञान को विचारना चाहिए। उसके विज्ञान को हम कैसे विचारेंगे। विचारते चले जाओ, विज्ञान का आश्रय जो अणुवाद से यन्त्रों का निर्माण किया जाता है और यन्त्रों का निर्माण करके जैसे याज्ञवल्क्य मुनि महाराज की विज्ञानशाला में था। वह जो एक आकाश-गंगा को दृष्टिपात करने लगे। एक आकाश-गंगा के सूर्य की गणना करने लगे तो बेटा! उन्होंने एक आकाश-गंगा में देखो! तीन खरब, पिचानवे अरब, नवासी करोड़, उनतीस लाख, उनचास हजार, पाँच सौ एक ही आकाश-गंगा में सूर्य की गणना होने लगी। एक आकाश-गंगा की गणना, ऋषि मौन हो गया। 'अन्तवत' और ऐसी-ऐसी आकाश-गंगायें जिसमें इतने सूर्य हों और ऐसी देखो पृथ्वियां अनन्त हैं। ऋषि कहता है, वेद का ऋषि कहता है मेरी विज्ञानशाला में अणु यन्त्रों से छः सौ बहत्तर आकाश-गंगायें दृष्टिपात आ गई तो यह प्रभु का विज्ञान कितना अनन्त है कि उसके ऊपर हम टिप्पणी करने में असमर्थ हो जाते हैं, वाणी वर्णन नहीं कर पाती। उच्चारण करूंगा बेटा! समय आता रहेगा एक-एक अणु के विभाजन करने से जैसा यह ब्रह्माण्ड है ऐसी-ऐसी एक-एक सृष्टि उसमें दृष्टिपात होती है। एक-एक अणु में सृष्टि विद्यमान है। आज मैं इस सम्बन्ध में बेटा विशेष चर्चा प्रकट नहीं करूंगा।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह, मानव तू ऊर्ध्वा में रमण करने वाला बन है अपनी इन्द्रियों पर संयम करता हुआ एक ही प्राण को अपने में स्वीकार करके मनस्तत्व को इसमें स्थिर कर। यह है बेटा! आज का वाक्य, समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। अब वेदों का पाठ होगा। दिनांक : 04-05-80, स्थान : दुर्गयाना मन्दिर, अमृतसर।

८ अष्टम अध्याय आध्यात्मिक याग 10 11 1981

जीते रहो! देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भान्ति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों को गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद-वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है अथवा उसके विज्ञानमय स्वरूप का वर्णन किया जाता है। वह मेरा देव विज्ञानमयी माना गया है क्योंकि ज्ञान और विज्ञान उस मेरे प्यारे प्रभु की आभा है। जिस आभा को जानने के पश्चात् मानव का जीवन अमृत बन जाता है। वह महानता में रमण करने लगता है।

विश्वभान मन

आओ मेरे प्यारे! आज का हमारा वेद-मन्त्र हमें क्या कह रहा है और किस मार्ग के लिए प्रेरित कर रहा था? वेद का मन्त्र 'मनस्यम् दिव्यम् लोकाम्'। मेरे प्यारे! आज का हमारा वेद-मन्त्र मनस्यम्। वह जो हमारे इस शरीर में और विश्वभान इस ब्रह्माण्ड में मनस्तत्व कार्य कर रहा है उसके ऊपर मानव को चिन्तन करना चाहिए।

हमने बहुत पुरातन काल में ऋषि-मुनियों की आभाएं, उनके विचार जब किसी काल में हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ तो मन के ऊपर नाना प्रकार की टिप्पणियां प्रायः परम्परागतों से ही होती रही हैं और होती रहती हैं। क्योंकि यह विश्वभान भी है और विशेष रूप बन करके वह मानव शरीर में अपनी क्रिया करता रहता है। क्योंकि हमारे यहाँ मनस्तत्व को प्रकृति का सबसे सूक्ष्मतम तत्त्व माना गया है। जिसके ऊपर दार्शनिकों ने, ऋषि-मुनियों ने बहुत ऊंचे रूपों से विचार-विनिमय किया। आज मैं तुम्हें धनिष्ठ और महान् क्षेत्र में नहीं ले जाता, क्योंकि गम्भीर वाक् उच्चारण करने के लिए आज का हमारा विषय नहीं है परन्तु आज का हमारा वेद-मन्त्र यह कह रहा था कि इस मन की आभा को हमें दूसरे रूपों में परिणत कर लेना चाहिए। इसके ऊपर संयम करना चाहिए। मन के ऊपर कौन संयम करता है? जो इस मन को अपनी आभा में परिणत करने वाला है। मेरे प्यारे! इसके द्वारा ज्ञान होता है। जो ज्ञानी बन करके इस मन को एक विभक्त क्रिया के रूप में स्वीकार करता है। क्योंकि यह मन सदैव विभाजन करता है इसका और कोई कार्य नहीं है संसार में। यह प्रत्येक वस्तु का विभाजन कर देता है। कितनी ही सूक्ष्म हो, कितनी ही स्थूल रूप में क्यों न हो परन्तु उसको विभक्त करता रहता है, विश्वभान मन बन करके इस लोक-लोकान्तरों में विभाजन करता रहता और विशेष बन करके इस मानव के शरीर में विभाजन करता रहता है। मानव शरीर में प्रवृतियों का विभाजन करता रहता है। एक मानव एक स्थली पर विद्यमान है परन्तु यह भिन्न-भिन्न रूप के चित्र चित्रित हो रहे हैं। मानव चित्रों में उसी प्रकार की भावना निहित रहती है। माता है, पुत्री है, पिता है, महापिता है, पड़पिता है, इसका विभाजन करता रहता है।

आओ मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें एक ऋषि के द्वार पर ले जाना चाहता हूँ। एक समय उद्दालक गोत्र में एक अश्वनकेतु नाम के ऋषि हुये हैं, यह उद्दालक जो गोत्र है, यह विशाल गोत्र माना गया है। एक समय ऋषिवर चिन्तन कर रहे थे, चिन्तन करते उनकी पत्नी उनके समीप आ गई, अब दोनों चिन्तन करने लगे। चिन्तन करने लगे तो ऋषि पत्नी ने यह कहा कि हे प्रभु! आप क्या चिन्तन कर रहे थे? अब ऋषि ने कहा कि देवी! तुम क्या चिन्तन कर रही थी? उन्होंने कहा कि मैं यह चिन्तन कर रही थी कि हमारे मानव शरीर में जो यह मनस्तत्त्व माना गया है, आज महारात्रि के काल में एक वेदमन्त्र मुझे स्मरण आया और वेदमन्त्र यह कह रहा था कि यह विश्वभान मन बन करके ये जो वायुमण्डल में तरंगें रमण कर रही हैं उनका विभाजन करता है। जबकि हमारे इस मानव शरीर में विद्यमान हो करके ये मन नाना प्रवृत्तियों का विभाजन करता है, नाना चित्रों का विभाजन करता है। अब यह

विभक्त क्रिया में लगा हुआ है। अब ऋषि ने कहा देवी! यही चिन्तन मैं कर रहा था। मेरा भी चिन्तन करने का यही विषय था, जो तुम्हारा है। तो इस मन के ऊपर दोनों का विचार-विनिमय होने लगा। तो विचार आया कि हम इस मन्त्र के द्वारा याग करना चाहते हैं। मेरे प्यारे! अब दोनों ने याग किया और याग में मन्त्रों का उच्चारण करने लगे। अब मन से सम्बन्धित यन्त्रों का निर्माण करने की विधियां भी प्रत्येक वेद-मन्त्रों में आती रहीं। उन्होंने उनको स्मरण कराया और कुछ मन्त्रों को ले करके उन्होंने इस विश्वभान मन के ऊपर एक यन्त्र का निर्माण किया और यन्त्र का निर्माण करते हुए जो विश्वभान मन, मानव के चित्रों को ले करके मानव के शब्दों को ले करके शब्दों के साथ में चित्रों को ले करके, मन के प्रत्येक श्वास के चित्रों को ले करके अब अन्तरिक्ष में मन विभाजन कर रहा है, विश्वभान बन करके मुनिवरो! इस विभक्त क्रिया में अभ्याद् गति दृष्टिपात आने लगी।

मेरे प्यारे! वहां उद्दालक मुनि गोत्र में उत्पन्न होने वाले ऋषि ने कुछ यन्त्रों का निर्माण किया और यन्त्रों का निर्माण करके उन्होंने चित्त की प्रवृत्तियाँ जो बिखर रही थीं, जो चित्र की प्रवृत्तियां विकृत रूप में परिणत हो गई थीं, उन चित्र, उनके चित्र की प्रवृत्तियों के विभाजन होने वाले विभाजन की प्रतिक्रियाएं थीं, उसके चित्र को यन्त्रों में वो दृष्टिपात करने लगीं। अब चाहे वह चित्त की प्रवृत्तियां यहाँ विभक्त हो जाएं, चाहे अन्तरिक्ष में विभक्त हो जाएं परन्तु दोनों का स्वरूप एक ही रूप में माना गया है। वह अन्तरिक्ष में विश्वभान मन कार्य कर रहा है और मानव शरीर में एक विशेष मन कार्य कर रहा है परन्तु दोनों एक ही सूत्र में पिरोए हुए मनके हैं। तो यह विभक्त क्रिया हो रही थी, तो यह यन्त्रों में दृष्टिपात आने लगी। ऋषि-मुनियों ने बहुत अनुसन्धान किया और अनुसन्धान करने के पश्चात जैसे वह ऋषि वेद-मन्त्र उच्चारण कर रहे थे, मन्त्रों का विशुद्ध रूप अन्तरिक्ष में रमण कर रहा था, उनका आकार बन रहा था, आकार बन करके, उनके चित्र बन-बन के यन्त्रों में उन्हें दृष्टि आने लगे।

तो मेरे पुत्रों आज मैं तुम्हे इन रहस्यों में तो ले जाने के लिए नहीं आया हूँ। केवल विचार-विनिमय क्या? वह मानव जो चिन्तन करता है, शान्त विराजमान है मानव भंयकर वनों में विद्यमान है मनस्तत्त्व तो अपने मन-ही-मन में चिन्तन कर रहा है। चिन्तन करता हुआ ऐसे यन्त्र ऋषि मुनियों ने निर्धारित किए कि चिन्तन करने वाली जो प्रवृत्तियां हैं, सूक्ष्म रूप से उनका आकार उन चित्रों में दृष्टिपात आता था। ऋषियों! तो विचार-विनिमय क्या? मेरे पुत्रों हमारे यहाँ परम्परागतों से ही वैदिक रहस्यों को जानने वाले ऋषिमुनि अनुसन्धान करते रहे हैं। आओ बेटा। आज मैं तुम्हें इस मन के ऊपर विशेष चर्चा नहीं करूंगा क्योंकि ये तो विशाल वन है, सूक्ष्मतम रहस्य है। किसी काल में विद्यमान होते थे, मन के ऊपर विचार-विनिमय चलता रहता था, क्योंकि यह जो तरंगवाद है, यह प्राण की तरंगें हैं, इन तरंगों का विभाजन करने वाला मन है। मेरे प्यारे! विश्वभान प्राण परमपिता परमात्मा की छाया है और मानव शरीर में यही प्राण आत्मा की छाया माना गया है। इसका जो प्रतिबिम्ब है, वह आ रहा है, मन जब आत्मा से आत्मा के प्रताप से अपनी अवस्थाओं को प्राप्त होता है। तो यह जो प्राण है, यह प्रतिक्रिया कर रहा है यह क्रियाशील है, उन क्रियाओं का विभाजन करने वाला मनस्तत्त्व है जो प्रकृति का सबसे सूक्ष्मतम-तत्त्व माना गया है। मैं उसी परम्परा में जाना चाहता हूँ जहाँ बेटा कल कुछ मन्त्रों का उच्चारण कर रहे थे। आज भी हम उच्चारण कर रहे थे।

महर्षि याज्ञवल्क्य का याग चिन्तन

महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि के आश्रम में तुम्हे ले जाने के लिए आया हूँ। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज अपने आश्रम में नित्यप्रति ब्रह्मचारियों के अंग संग विद्यमान हो करके याग करने लगे। प्रातः कालीन ब्रह्मचारी कवन्धि, ब्रह्मचारी गार्गेपथ्य, ब्रह्मचारी रोहिणीकेत ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारी प्रतिभानु, ब्रह्मचारी अनेककेतु नाना ब्रह्मचारियों के अंग-संग विद्यमान होकर के याग प्रारम्भ करने लगे। तो मुनिवरो! ब्रह्मचारी कवन्धि ने यह प्रश्न किया कि महाराज!

आप याग क्यों करते हैं? इसको याग क्यों कहते हैं? याग का क्या अभिप्राय हैं? तो महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा कि ये जो हम याग कर्म करते हैं, यह जो याग है और हमारा जीवन है, यही हमें ऊर्ध्वा में ले जाने वाला है। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज से ब्रह्मचारी कवन्धि ने और गार्गेपथ्य दोनों ने एक स्वर में कहा कि महाराज इस याग का सम्बन्ध द्यौ लोक से माना गया है। जब विशुद्ध रूप से यजमान याग करता है, जब ब्रह्मण उद्गाता-विशुद्ध रूप से वेदों का उद्गान गाता है और गाता ही रहता है तो उद्गाता का और यजमान का रथ बन करके द्यौ लोक में उसका समन्वय हो जाता है। द्यौ-लोक में उसके चित्र रमण करने लगते हैं, मेरी विज्ञानशाला में भी प्रायः ऐसा होता रहा है। ब्रह्मचारी कवन्धि का अन्तरिक्ष में एक यान चल रहा है। अन्तरिक्ष में मैने एक यन्त्र को त्यागा है। नाना लोकों के चित्र ले करके और इस मेरी यज्ञशाला में परिणत करता रहता है। मैं उन चित्रों को दृष्टिपात करता रहता हूँ। यन्त्र तुम्हें दृष्टिपात है, मैंने बहुत पुरातन काल में इसे याग की सहायता से निर्माण किया था। जो यन्त्र मेरा अन्तरिक्ष में गति करता है और गति करके लोकों के चित्र ला-लाकर के मुझे अर्पित करा देता है, वहाँ की ध्वनि भी मुझे स्मरण आती रहती है, किस लोक में किस प्रकार का प्राणीमात्र रहता है? इस प्रकार की भी ध्वनियां आती रहती हैं। जब ब्रह्मचारी को यह वर्णित कराया तो ब्रह्मचारी बोले कि महाराज इस यज्ञ के विशद्ध रूप को और जानना चाहता हूँ। ऋषि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा हे ब्रह्मचारी कवन्धि हे ब्रह्मचारी यज्ञदत्तः! मैं जो याग कर रहा हूँ इसी याग में तपस्या का प्रतिपादन होता है। यह तप में ले जाता है प्राणी को, तप क्या है? तप कहते हैं मानव के त्याग को। बेटा! जो त्यागी तपस्वी मानव में त्याग आता है, त्याग के पश्चात् मानव में तप आता है तप किस कहते हैं? त्याग किसे कहते हैं? मेरे प्यारे! देह का जो त्याग करता है और त्याग का जो विशुद्ध है। अशुद्ध भावनाओं का मानव त्याग करता है और जो सम्पदा है उसे शुभ कार्यो में, देव-पूजा में परिणत कर देता है। तो त्याग और तपस्या यह है कि हम इन्द्रियों की जो अशुद्ध धारणा है, अशुद्धता है, उसे हम त्याग देते हैं और त्याग करके अपनी आभा में परिणत होते हुए, त्याग और तपस्या में हम परिणत होकर के और हमारा जो ज्ञान है वह यज्ञशाला के रथ में विद्यमान होकर के वह द्यौ-लोक को रमण करने लगते हैं। हे ब्रह्मचारी! हम द्यौ-लोक को चले जाते हैं। उन्होंने कहा कि महाराज यह द्यौ-लोक क्या है? तो ऋषि कहता है कि हे ब्रह्मचारियों! द्यौ उसे कहते हैं। जहाँ शब्दों को आभा विद्यमान हो जाती है, जहाँ शब्द विद्यमान हो जाते हैं, जहाँ विद्युत का सूत्र रहता है, द्यौ में यह लोक-लोकान्तर समाहित रहते हैं उसका नाम द्यौ कहलाता है। मेरे प्यारे! द्यौ नाम सूक्ष्मतम प्रभु के तेज का नामोकरण, हमारे यहाँ द्यौ को माना गया है।

तो मेरे पुत्रो! ऋषि कहते हैं हे ब्रह्मचारियों इस द्यौ में हमारे चित्र जाते हैं उस द्यौ में यज्ञशाला का रथ बनकर के जाता है। वास्तव में हम ब्रह्म की आभा में रमण करने वाले बनते हैं। जब ऋषि ने यह कहा तो उस ब्रह्मचारी ने इसको स्वीकार कर लिया और ब्रह्मचारियों ने पुनः निश्चय करके कहा कि महाराज आप याग क्यों करते हैं? ब्रह्मचारियों ने प्रश्न किया तो ऋषिवर शान्त होकर के बोले कि हम याग इसलिए करते हैं कि याग से चरित्र आता है। चरित्र किसे कहते हैं? जो हम याग कर्म करते हैं याग कर्म करने से एक-दूसरे से हम कटिबद्ध हो जाते हैं, परस्पर एक सूत्र में हम पिरोये जाते हैं। एक सूत्र में जब पिरोये जाते हैं तो हमारे जीवन की जो ऊर्ध्व तरंगें हैं तो उनका जो विशुद्ध रूप, उनका जो चित्रण हमारे समीप आने लगता है, तो हम याग करते हैं। याग कर्म करने में हमारे यहाँ मेघों से वृष्टि होती है, इन्द्र प्रसन्न होते हैं। इन्द्र देवता अपनी आभा में इस मानव समाज को एक सूत्र में पिरो लेते हैं। ऋषि ने कहा कि हम इसलिए याग कर्म करते हैं। मेरे पुत्रो! ऋषि-मुनि, ब्रह्मचारियों ने पुनः यह प्रश्न किया कि महाराज! आज याग कर्म क्यों कर रहे हैं? इसका क्या अभिप्राय हैं? तो महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज बोले कि हम इसलिए याग कर रहे हैं कि हमारे प्रत्येक श्वास के साथ जितना भी समाज है हम उस

अशुद्ध परमाणुओं को वायुमण्डल में प्रवेश करा देते हैं और वायुमण्डल मे जो अशुद्ध परमाणु रमण कर रहा है यह परमाणु उनको निगल जाते हैं और अपनी शुद्ध आभा को अन्तरिक्ष में परिणत कर देते हैं। तो यह परमाणुवाद और तरंगवाद का जगत् हैं तरंगवाद ही इस जगत् में ओत-प्रोत है। जब ऋषि ने ऐसा उन्हें उत्तर दिया तो ब्रह्मचारी मौन होने लगे।

यज्ञ के होता

ब्रह्मचारियों ने कहा कि महाराज! अब हम एक बात आपसे जानना चाहते हैं कि हमारी इस यज्ञशाला में जो यजमान है वह याग करना चाहता है। इस याग में कितने होता होने चाहिएं? जब ऋषि से ये प्रश्न किया, तो ब्रह्मचारी कवन्धि प्रश्नकर्ता बन गए और गार्गेपथ्य यजमान बने। तो ब्रह्मचारी कवन्धि ने यह कहा कि महाराज ये जो यजमान याग करना चाहता है यह यजमान विद्यमान है इसमें कितने होता हों? ऋषि कहता हे ब्रह्मचारियों! इस यज्ञशाला में चौबीस होता होने चाहियें। उन्होंने कहा, बहुत प्रिय। अब ब्रह्मचारी पुनः कहता है कि महाराज यजमान याग करना चाहता है, इसमें कितने होता हों? उन्होंने कहा कि यज्ञशाला में जो ब्रह्मचारी याग करना चाहता है उसमें सत्रह होता होने चाहियें। अब पुनः मेरे प्यारे मौन होकर के ब्रह्मचारी कहता है कि महाराज! यह यजमान जब याग करना चाहता है, तो याग में कितने होता हों? उन्होंने कहा ग्यारह होता होने चाहिएं। जब उन्होंने पुनः यही प्रश्न किया कि महाराज! यह यजमान जब याग करना चाहता है, इसमें कितने होता हों? तो उन्होंने कहा नौ होता होने चाहिएं। जब पुनः प्रश्न किया कि यज्ञशाला में यजमान विद्यमान हैं, यजमान याग करना चाहता है, कितने होता हों? तो इसकी वाणी को शुद्ध बनाने के लिए उन्होंने कहा कि आठ होता होने चाहिएं। उन्होंने कहा कि महाराज! परन्तु हम यह जानना चाहते हैं, यजमान याग करना चाहता है कितने होता हों? उन्होंने कहा यज्ञशाला में पाँच होता होने चाहिये। मेरे प्यारे! जब प्रश्न किया कि महाराज यजमान याग करना चाहता है? कितने होता हों, अपने कल्याग के लिए याग करना चाहता है? तो उन्होंने कहा यज्ञशाला में तीन होता होने चाहियें। ब्रह्मचारी कहता है कि महाराज यजमान अपने कल्याण के लिए, द्यौ-लोक में जाने के लिए, अपने संसार को एक सूत्र में लाने के लिए याग करना चाहता है तो कितने होता हों? उन्होंने कहा कि इसमें दो होता होने चाहियें। मेरे प्यारे जब पुनः प्रश्न किया कि महाराज यज्ञशाला में कितने होता हों तो उन्होंने एक उच्चारण किया। एक उच्चारण करके ब्रह्मचारी मौन हो गये। ब्रह्मचारी के मौन हो जाने पश्चात् याज्ञवल्क्य मुनि महाराज भी मौन हो गये।

चौबीस होता क्यों?

अब दूसरा काण्ड प्रारम्भ हुआ। अब पुनः से उन्होंने प्रश्न करना प्रारम्भ किया। ब्रह्मचारी कवन्धि ने गार्गेपथ्य की प्रेरणा से कहा कि महाराज चौबीस होता क्यों होने चाहिये। तो ऋषि कहता है कि ब्रह्मचारियों! यह जो मानव का शरीर है, यह चौबीस स्तम्भों वाला शरीर कहलाता है। ये जो मानव शरीर रूपी यज्ञशाला है इस यज्ञशाला में मानो चौबीस स्तम्भ माने गए हैं। दस प्राण हैं, दस इन्द्रियाँ हैं, मन बुद्धि, चित्त, अहंकार। ये चौबीस खम्बे हैं, इस मानव शरीर के। ब्रह्मचारी ऋषि से कहते हैं कि महाराज यह चौबीस खम्बे क्या हैं? तो उन्होंने कहा कि इन चौबीस खम्बों में सर्वत्र ब्रह्मण्ड समाहित हो रहा है। यह जो मानव का शरीर है यह चौबीस खम्बों वाला, इसमें दस प्राण हैं, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, दस इन्द्रियाँ कहलाती हैं और इस मन की चार प्रकार की धाराएं होती हैं। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। ये अन्तःकरण कहलाते है। इसमें सर्वत्र मानव के जन्म-जन्मान्तरों के चित्र मण्डल बेटा! देखो! मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार में समाहित रहता है। मैं तुम्हें किस भंयकर वन में ले गया हूँ। यह विशाल वन है। आज मैं जब चित्त की विवेचना करने लगता हूँ तो तुझे स्मरण है एक समय महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज साधना कर रहे थे और साधना क्या कर रहे थे? जो जन्म-जन्मान्तरों के चित्र, उन चित्रों को वह साक्षात्कार करना

चाहते थे। मैं उनको दृष्टिपात करूं। इस चित्त के मण्डल में कितने जन्म-जन्मान्तर विद्यमान रह सकते हैं। तो मेरे प्यारे! ऋषि अनुभव करने लगे।

एक समय बेटा! गार्गेपथ्य ने अश्वन्केतु ऋषि से प्रश्न किया और महर्षि विभाण्डक मुनि से कहा कि महाराज आप इन चित्रों का दर्शन कर रहे हैं, आपको कुछ प्रतीत हुआ कि नहीं आपके चित्त में कितने जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार विद्यमान रहते हैं। तो महर्षि विभाण्डक उद्दालक ने यह कहा था। वेदमन्त्र में बेटा करोड़ों जन्मों के संस्कारों का वर्णन आता रहता है तो ऋषि विभाण्डक ने कहा था ऋषियों से कि अब तक चौरासी लाख जन्मों के चित्र तो मैं अपने अन्तःकरण में दृष्टिपात कर सका हूँ। ऋषियों ने बहुत अनुसन्धान करने के पश्चात् लाखों जन्मों के संस्कार इस चित्रमण्डल में दृष्टिपात किए हैं। इस मानव के शरीर में चित्त नाम का स्थान होता है। मानव जहाँ इस ब्रह्माण्ड का भी चित्रण करता रहता है। वह जो चित्रण होता रहता है वो अपनी आभा में रमण करने वाला है देखो, जैसे इस पृथ्वी में चित्त है जैसे अन्तरिक्ष में है, अग्नि की तरंगों में माना गया है बाह्य चित्त और आन्तरिक चित्त दोनों का आपस में समन्वय होता रहता है। जब इनका समन्वय होता है तो ऋषि-मुनि इस आन्तरिक जगत् को और बाह्य जगत् दोनों का समन्वय करके बेटा! जब इन जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों का अनुभव करते रहे।

तो बेटा! आज मैं तुम्हे विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय क्या? महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज दण्डक वनों में रहते थे, कजली वनो में भी रहते थे। अब वे अपने चित्तों का दर्शन करते रहते हैं। बेटा! मुझे स्मरण है, एक समय महर्षि रेवक मुनि महाराज के यहाँ महाराज ज्ञानश्रुति जब पहुंचे तो महाराजा ज्ञानश्रुति ने यह कहा कि महाराज आप यह क्या कर रहे हैं, गाड़ी के नीचे? तो रेवक मुनि ने कहा था कि महाराज! मैं इस मन में जो बुद्धि अंहकार है, इसमें जो चित्त का मण्डल विद्यमान रहता है और चित्त के मण्डल में जो जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार चित्र रूप में परिणत हो रहे हैं मैं उन चित्रों का दर्शन करना चाहता हूँ और उन्होंने कहा कि मैं कर रहा हूँ। ज्ञानश्रुति ने कहा कि महाराज आप कितने कर पाये हैं? तो ऋषि ने कहा था। मैं अपने इस अन्तरिक्ष में, मैं इस चित्त के मण्डल में एक करोड़ जन्मों की वार्ताओं को अब तक जान पाया हूँ। तो मेरे प्यारे! ऋषि-मुनियों का क्रियात्मक जीवन रहता है केवल शब्दों में नहीं था। क्रियात्मकता में रमण करते रहे गाड़ीवान रेवक। चार सौ पचीस वर्ष, मुनिवरो! उन्होंने इन्द्र के कथनानुसार तपस्या की थी। एक सौ एक वर्ष तक उन्होंने इसी साधना में लगाए। मैं इस चित्त के मण्डल को जानना चाहता हूँ। इस आन्तरिक जगत् के चित्त को और बाह्य चित्त को, दोनों का समन्वय करना चाहता हूँ।

चित्त-मण्डल का स्वरूप

मेरे प्यारे! आज का विचार क्या? ब्रह्मचारी से महर्षि याजवल्क्य मुनि कहते हैं कि वह चित्त का मण्डल है, चित्त का मण्डल मन, बुद्धि, चित्त अहंकार कहलाए जाते हैं। इसमें अहंकार भी विद्यमान है। मैं भौतिक रूपों से और आध्यात्मिक रूपों से दोनों का समन्वय करता रहता हूँ। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि जब मैं इसका चित्रण लेता रहता हूँ। तो मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इसमें एक बाल्य अवस्था से ले करके और वृद्ध तक की वार्ता मेरे चित्त में विद्यमान रहती हैं। वही जन्म-जन्मान्तरों का मूल कारण बनता है, वही स्मृतियों का मूल कारण बनता है। इसी चित्त की आभा में चार प्रकार की बुद्धियों के विवरण होते रहे हैं। जैसे बुद्धि है, मेघा है, ऋतम्भरा है, प्रज्ञा कहलाती है बुद्धि, मेघा ऋतम्भरा, प्रज्ञा आकृतियों में यह चार प्रकार की बुद्धियों का वर्णन हमारे चित्तमण्डल में होता रहता है। यह मन की ही धारा है, मन की तरंगें हैं। आगे वेद का ऋषि कहता है यह दस प्राण इस शरीर में गति करते रहते हैं। यह प्राण है और एक ही प्राण के दस भाग कहलाए जाते हैं। यह विभाजन कौन कर रहा है? वह जो प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तन्तु माना गया है। वही मनस्तत्त्व जिसमें चतुर्थ प्रकार की बुद्धि विद्यमान रहती है।

बुद्धियों के चार प्रकार जैसे माने गए हैं। एक योग्यता में ले जाने के लिए, जैसे-बुद्धि है, मेघा है, ऋतम्भरा है, प्रज्ञा कहलाती है। वो जो प्रज्ञा बुद्धि है वह परमात्मा से मिलन करती है, क्योंकि वहाँ मन और प्राण दोनों एक सूत्र में आ जाते हैं और वहाँ परमपिता परमात्मा से मिलान करता है योगी। योगी के शरीर को नाना प्रकार की ग्रन्थियाँ बेटा! ग्रन्थियों का स्पष्टीकरण हो जाता है। तो मैं योग के क्षेत्र में भी नहीं जाना चाहता हूँ। विचार-विनियम क्या? बेटा, यह तो भंयकर वन है जिसमें मैं आज आ गया हूँ इसकी विवचेना करता रहा हूँ । आज का विचार-विनिमय क्या? यह मानो चौबीस खम्भो वाला यह मानव शरीर माना गया है। यह मानव शरीर रूपी जो यज्ञशाला है जिसमें आत्मा यजमान बन करके याग कर रहा है, इसमें मनस्तत्त्व, प्राणस्तत्त्व होता बन करके हृदय रूपी यज्ञशाला में स्वाहा दे रही है। तो स्वाहा हो रहा है, उसी स्वाहा में मानव उसी हृदय से श्रद्धा उत्पन्न होती है। उसी से याग की भावना उत्पन्न होती है, उसी से मेधावी आभा उत्पन्न होती रहती है।

विचार-विनिमय क्या? आज का हमारा यह वाक् क्या कह रहा है? हम इस मानव शरीर रूपी यज्ञशाला को जानने का प्रयास करें। ब्रह्मचारी अपने गुरुओं की शरण में जा करके आचार्य के समीप जो प्रश्न करता है वो मेधावी बन करके, आध्यात्मिक और भौतिक याग दोनों का प्रश्न करता है और दोनों का समन्वय करा देता है। भौतिक याग में यह संसार का विज्ञान है, संसार का तरंगवाद है, इस मन का विश्वभान बना करके जो तरंगों का विभाजन हो रहा है, कही विस्फोट, कहीं विज्ञानी बन रहा है, कहीं सूर्य की तरंगों को विभाजित किया जा रहा है। उनका नाना रूपों में एक-दूसरे का एक-दूसरे में विस्तार होता रहता है। अन्तरिक्ष में भी नाना प्रकार की तरंगें एक-दूसरे में परिणत हो जाती हैं। तो उसका विश्वभान, उसका दायित्व देखों विश्वभान के ऊपर है, वह भी मनस्तत्त्व माना गया है और यह जो आत्मिक याग है, यह जो आध्यात्मिक याग है, इसको भी यह इन्द्रिय रूप में मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के रूप में इस मन के यह मनके कहलाए जाते हैं, एक सूत्र में पिरोने का कार्य मेरे प्यारे! चेतना में जब दो सूत्र में पिरोये जाते हैं तो बेटा! यह मन का सूत्र, दोनों का समन्वय हो करके माला के सदृश बन करके मानव के समीप आ जाते हैं।

शिष्य

यह हैं बेटा! आज का हमारा वाक्य, आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या था बेटा! आज मैं तुम्हें मनस्तत्त्व शिष्य और गुरु दोनों की जो वेदनाएं हैं, विद्यालयों में जो उत्तर-प्रश्न होते रहते थे, बाह्य जगत् और आंतरिक जगत्, दोनों जगतों का समन्वय होता रहता था। ऋषि-मुनियों से विचारों में समन्वय होता रहता है और यह होना चाहिए क्योंकि विद्यालय उसी काल में ऊंचे बनते हैं जब बाह्य जगत् व आन्तरिक जगत् दोनों का चित्रण होता रहता है। यह है आज का हमारा वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या, कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए उन यागों के ऊपर चिन्तन करते रहें। बेटा! मैं आज अपने विषय को बहुत भयंकर वन, सूक्ष्मतम रहस्य की चर्चा करने में लगा था। यह आध्यात्मिक याग की चर्चाओं में कुछ मनके रह रहे हैं, उनका कल उच्चारण करूंगा कि इस यज्ञशाला में सत्रह होता क्यां हैं और ग्यारह क्यों हैं, नौ क्यों होने चाहिएं, सात क्यों हैं? इन मनको की चर्चाएं मैं कल प्रकट करूंगा।

आज का वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए उसके ज्ञान और विज्ञान को जानते रहें। उसके ज्ञान और विज्ञान में परिणत होते रहें जिससे हम अपने मानव जीवन की प्रतिक्रियाओं को जान करके इस संसार-सागर को पार हो जाएं। जो इस संसार में मान और अपमान वाला जो जगत् है, इन तरंगों को हम शांत करते हुए और इस संसार रूपी जो समुद्र है इस समुद्र से हम याग की आभा में विद्यमान् हो करके इस संसार की आभा से पार हो जाये। बेटा! आज का हमारा यह वाक्य समाप्त हो रहा है।

कल समय मिलेगा तो तो शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। आज का वाक्य समाप्त। अब वेद-मन्त्रों का पाठ होगा।

दिनांक : 10.11.1981, स्थान : ग्राम लूम्ब

९ नवम अध्याय बाह्य एवं आन्तरिक चित्त-समन्वय 18 01 1982

जीते रहो! देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भान्ति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है, क्योंकि वह परमपिता परमात्मा प्रतिभाशाली है। उसकी प्रतिभा, सर्वत्र जगत् में दो रूपों में हमें दृष्टिपात आ रही है। जितना भी यह जड़ जगत् अथवा चैतन्य जगत् है उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में उस परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान निहित रहता है और जिस विज्ञान की आभाओं में परम्परागतों से ही मानव भिन्न-भिन्न प्रकार की उड़ान उड़ता रहा है। उड़ान उड़ने वालों में बेटा! नाना ऋषि हुए हैं जो ज्ञान और विज्ञान की उड़ान उड़ते हुए अपने देव की आभा में रमण करते रहे हैं।

ऋषियों द्वारा प्राण चिन्तन

मेरे पुत्रो! वेदमन्त्र कुछ हमें प्रेरणा देता रहता है। आज का हमारा वेदमन्त्र आ रहा था जिसमें यदि हम उस अपनी प्राणोमयी आभा को जानने लगते हैं तो सर्वत्र ज्ञान और विज्ञान उसके समीप आ जाता है। क्योंकि यह जो प्राणोमयी कुछ विज्ञान हमें दृष्टिपात आता है उसके ऊपर ऋषि-मुनियों ने बहुत अनुसन्धान किया। मुझे स्मरण आता रहता है एक समय बेटा! महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और महर्षि भारद्वाज दोनों ऋषि अपने आसन पर विद्यमान थे और महर्षि वशिष्ठ जी ने यह कहा भारद्वाज मुनि से कि वेद का मन्त्र यह कहता है कि प्राण एक सूत्र है इसके सम्बन्ध में तुम्हारा मन्तव्य क्या है? महर्षि भारद्वाज ने कहा कि महाराज! ज्ञान तन्तु से इसके ऊपर विचार-विनिमय किया जाए या दार्शनिक रूपों से। महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले, हे भारद्वाज! दर्शन विज्ञान के गर्भ में और विज्ञान दर्शन के गर्भ में विद्यमान रहता है। क्योंकि जितना भी दर्शन हमें दृष्टिपात आता है वह दर्शन विज्ञान की तरंगों में रमण कर रहा है। परन्तु जितना भी मानवीय आभा में विज्ञानमयी स्वरूप माना गया है वह विज्ञान दार्शनिकों के मस्तिष्कों में अथवा दर्शनों से गुथा हुआ सा दृष्टिपात होता है। जैसे हमारा मानवीय जीवन और बाह्य जगत् का जितना यह विज्ञान है इन दोनों का यदि हम तुलनात्मक चिन्तन करने लगते हैं तो बेटा! हमें नाना प्रकार की आभाएं एक सूत्र में रमण करती हुई दृष्टिपात आती हैं। मेरे प्यारे! ऋषि ने कहा कि हे भगवन! यह वाक्य आपका यथार्थ है। परन्तु दर्शन क्या कह रहा है और विज्ञान क्या कहता है? इसके सम्बन्ध में प्रत्येक वेदमन्त्र इसकी विवेचना कर रहा है। कोई नवीन विवेचना नहीं होती। परन्तु यह विवेचना सार्वभौम कहलाई जाती है जो प्रत्येक मानव जिस आभा में वह रमण करता रहता है जिससे वह आभायित रहता है जैसे मेरे प्यारे! यह जो विज्ञान है वह गतियों में दृष्टिपात होता है परन्तु जितना भी मानवीय दर्शन है वह परोक्ष और अपरोक्ष दोनों में विज्ञान के साथ गति करता-सा दृष्टिपात आता है। परन्तु जब भारद्वाज ने यह कहा तो वशिष्ठ मुनि बोले, हे भारद्वाज! तुम शंकामयी आभा को क्यों प्रकट कर रहे हो? इसके होने में तुम्हें कोई शंका-सी दृष्टिपात आती है। उन्होंने कहा प्रभु! मैं इसलिये यह दृष्टिपात कर रहा हूँ क्योंकि जब मानव ज्ञान और विज्ञान की अन्तिम चरम सीमाओं की चर्चा करता है, उस समय मानव को शंका में रहना चाहिए। क्योंकि वहाँ नेति का प्रसंग आ जाता है, उसमें मानव मौन हो जाता है। जैसे राजा जनक के यहाँ ब्रह्मयाग होता रहा तो ब्रह्मयाग होने में जब चाक्राणि गार्गी उपस्थित हुई और उन्होंने एक-दूसरे को लय होने की चर्चाएं प्रकट कीं और यह कहा कि महाराज! यह जगत् किसमें ओत-प्रोत है? तो उन्होंने उसका भली भांन्ति उत्तर दिया कि एक-दूसरे में यह जगत् और यह ब्रह्माण्ड दृष्टिपात हो रहा है, एक-दूसरे में लय होता हुआ दृष्टिपात हो रहा है। तो जब अन्तिम चरम सीमा पर लय होने की वार्ता आयी तो उस समय महर्षि याज्ञवल्क्य

मुनि ने यह कहा कि हे देवी! तुम्हारा यह तो मस्तिष्क है यह नीचे गिर जाएगा यदि तुम अति प्रश्न करोगी। जो अति प्रश्न करता है इसमें हृदय पर आकर मौन हो जाता है। जब हृदय की वार्ता आती है तो मानव के शरीर में जितनी इन्द्रियाँ हैं, जितने यज्ञशाला के होता हैं वह सब साकल्य ला करके, होता बन करके यज्ञशाला में प्रवेश करते हैं। यज्ञशाला में वह स्वाहा देते हैं, नाना प्रकार के साकल्य को ला करके। इसी प्रकार यह हृदय रूपी जो यज्ञशाला है इस यज्ञशाला में नाना सामग्री लाते हैं। इस हृदय रूपी यज्ञशाला में वह इसका स्वाहा कर देते हैं। वह उसमें स्वाहा हो जाता है। जैसे एक मानव सुन्दर-सुन्दर रूपों को दृष्टिपात कर रहा है। नेत्रों से उन रूपों का समन्वय रहता है और वह रूप को ला करके मुनिवरों! कहाँ? हृदय में प्रवेश करा देता है। उस हृदय की जो प्रतिष्ठा है वह मानव का हृदय ही माना गया है। इसी प्रकार जैसे नाना शब्दों को ला करके कौन? बेटा! वह मुख लाता है नाना शब्दों के साथ में चित्रों को लाता है। शब्दों के साथ में परमाणुवाद को ला करके उसकी भी प्रतिष्ठा हृदय में समाहित हो जाती है, चित्त का यह मण्डल बनता रहता है, इसी से मुनिवरो! आन्तरिक चित्त का मण्डल भी निर्माणित होता रहता है। तो इसी प्रकार जैसे अप्रतम प्रीति है, प्रेम है उसका प्रतिनिधि मुनिवरो! श्रोत्रों का समन्वय अन्तरिक्ष में रहता है, शब्द की जो प्रतिष्ठा है वह अन्तरिक्ष माना गया है और आन्तरिक जगत् में, मानवीय दर्शन में हृदय माना गया है। इसी प्रकार दोनों को समष्टि और व्यष्टि दोनों का समन्वय करने का नाम ही ज्ञान और विज्ञान की धाराओं में रमण करना है। जैसे मेरी प्यारी माता अपने पुत्र से स्नेह कर रही है परन्तु उस स्नेह का जो स्रोत है वह कहाँ से उत्पन्न हो रहा है? मुनिवरो! वह मिलन से हो रहा है और मिलन का जो समन्वय हो रहा है उसकी प्रतिष्ठा माता का हृदय माना गया है, हृदय में उसकी प्रीति प्रतिष्ठित हो जाती है, वह प्रतिष्ठा उसमें ओत-प्रोत हो जाती है। देखो, हृदय का जो समन्वय है वह बाह्य जगत् में अन्तरिक्ष से रहता है। मुनिवरो! यह संसार एक-दूसरे में प्रीति रूपी सूत्र में पिरोया हुआ दृष्टि पात आता रहता है।

ब्रह्म का स्रोत

तो मेरे पुत्रो! विचार-विनिमय क्या? यह हृदय ही ब्रह्म का स्रोत माना गया है। विचार आता रहता है वाणी उद्गान प्रकट कर रही है, रसों का स्वादन कर रही है। नाना प्रकार के रसों को ले करके रसों का समन्वय नाना प्रकार की वनस्पतियों से होता है और नाना वनस्पतियों का जो समन्वय है वह चन्द्रमा से रहता है और चन्द्रमा का जो समन्वय है वह मानव की रसना से पुनः रहता हुआ हृदय में प्रतिष्ठित हो जाता है। रसों की आभा में रमण करने लगता है क्योंकि ऋषि मुनियों की जो परम्परागतों से भाषा रही है वह एक दूसरे में प्रतिष्ठित होने की मनोभावनाओं को प्रत्येक स्थलियों पर उन्होंने बल दिया है। आज का विचार क्या? बेटा! यह संसार उस महान् देव में चेतना में प्रतिष्ठित हो रहा है और मुनिवरों! जहाँ दर्शन की चर्चा आती है, प्रत्येक इन्द्रियों का जो समन्वय रहता है जैसे घ्राण है। यह नाना प्रकार की सुगन्धि लाता है। एक यज्ञशाला में होता विद्यमान है, यजमान भी विद्यमान है। परन्तु साकल्य का जब वह अग्नि में जब स्वाहा देता है, जिस समय सूक्ष्म बना करके उसका ''अप्रतम् ब्रहेः'' सुगन्ध बना देता है। घ्राण उस सुगन्ध को लेकर के हृदय में प्रतिष्ठित हो जाती है। हृदय में वह शान्त हो जाती है और हृदय से ही वह भावना उत्पन्न होती है। तरंगे उत्पन्न होती हैं कि कैसी सुगन्ध आ रही है। मेरे प्यारे! घ्राण इन्द्रियाँ उसको ले जाती हैं। उसी से सुगन्ध का एक चित्र बनता है और वह चित्र बन करके हृदय में भ्रमण करता हुआ उसी चित्र का संबंध अन्तरिक्ष में विद्यमान होता है।

जैसा मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हे निर्णय देते हुए कहा था कि अंगिरस गोत्रीय सोमभानु ऋषि महाराज अपने आसन पर विद्यमान हो करके अपना आन्तरिक चित्त और बाह्य चित्त दोनों का समन्वय कर रहे थे। दोनों का मिलान कर रहे थे। क्योंकि यह जो हमारा अन्तः करण कहलाता है, उस अन्तःकरण में इस 'चित्त मंगलाम् ब्रहे

वृताम् देवः' मुनिवरो! आन्तरिक तो चित्त बना हुआ है और चित्त में नाना प्रकार की आभायें विद्यमान होती हैं जिनका सम्बन्ध इस बाह्य चित्त से होता है। अन्तःकरण का सम्बन्ध चित्त मण्डलों से होता है। और चित्तमण्डलों का समन्वय मेरे प्यारे बाह्य चित्त से होता है तो अंगिरस गोत्रीय ऋषि अपने आसन पर विद्यमान हो करके चित्तों का मिलान कर रहे थे और इस चित्त मण्डल से ही मानवीय जीवन में आवागमन का सम्बन्ध होता है। एक आत्मा इस शरीर में है शरीर जब जीर्ण हो जाता है अथवा जीर्ण भी नहीं होता, भोगों के आधार पर यह मिलन और विच्छेद करता रहता है। परमाणुओं का मिलन हुआ, विच्छेद हो गया, विच्छेद हो करके, मिलन हो करके मेरे प्यारे! यह सब चित्त के मण्डल की आभा कहलाती है। इस चित्त के मण्डल में भोगवाद विद्यमान रहता है। इसी से आवागमन की आभा का जन्म होता है।

बाह्य एवं आन्तरिक चित्त का मिलान

बेटा! तुम्हें केवल परिचय दूंगा, व्याख्या नहीं देने आया हूँ। और यह परिचय क्या है? बहुत गम्भीर परिचय है जिसके ऊपर हम परम्परागतों से अनुसन्धान करते रहे हैं। आचार्यो ने भी इसके ऊपर बहुत अन्वेषण किया। विचार-विनिमय भी किया है और मुनिवरो! उनके विचार दर्शन शास्त्रों की आभा में, दर्शनों में आभायित रहते थे। तो बेटा! विचार क्या? अंगिरस ऋषि महाराज यह चिन्तन कर रहे थे कि मेरा यह जो बाह्य चित्त है और आन्तरिक चित्त है, इसका मिलान होना चाहिए। योगी किसे कहते हैं, योगी कौन होता है? इसके ऊपर भी परम्परागतों से टिप्पणियाँ होती रही हैं। विचार क्या? वह चित्त के ऊपर अनुसन्धान करने लगा और बाह्य जो चित्त है, जिस चित्त में से बेटा! आवागमन की तरंगें आती रहती हैं उन तरंगों के साथ में चित्र आते रहते हैं। उस ऋषि के पास तरंग बेटा! एक तरंग आई, उस तरंग का उन्होंने अन्वेषण किया, उसका विभाजन किया। तो विभाजन करने मात्र से जितना यह ब्रह्माण्ड तुम्हें दृष्टिपात आता है, परोक्ष-अपरोक्ष रूप से जो भी दृष्टिपात आ रहा है यह योग की आभा में रमण करने वाला ऋषि तरंगों में सर्वत्र ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात करने लगा। यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक तरंग में ओत-प्रोत हो गया। ओत-प्रोत होता हुआ जब ऋषि को दृष्टिपात आया तो बाह्य चित्त आन्तरिक चित्त के सम्बन्ध में दोनों का समन्वय करने में ऋषि लग गया। उन्होंने एक-एक इन्द्रिय के रूप, उसके विषय के ऊपर अनुसन्धान किया, अन्वेषण किया, मौन रह-रह करके चित्त को, उन्होंने जानने का प्रयास किया तो बेटा वह ऋषि आन्तरिक चित्त को बाह्य चित्त को शांत मुद्रा में करके उसका दिग्दर्शन किया करता था। जब वह दर्शन कर रहा था तो एक समय दर्शन करते हुए उनमें एक ऐसी तरंग आई जिसका सम्बन्ध पुराना था। बहुत जन्मों के पश्चात् की वह तरंग थी, उस तरंग के ऊपर अनुसंधान करने लगा तो उसका जो सौवां जीवन था, उसकी तरंगें उस तरंग में तरंगित होती हुई उनको दृष्टिपात आने लगीं। जब दृष्टिपात हुई तो उसने अपने में यह स्वीकार किया कि जितना भी चित्त का मण्डल है जैसे बाह्य जगत् है, आन्तरिक जगत् है इन दोनों के ऊपर ऋषि ने अनुसन्धान करके अपना यह निर्णय दिया, जितना भी वह दे सकते थे कि इस चित्त के ऊपर ही मानव का जीवन नृत्य करता रहता है। जैसा मानव के चित्त का मण्डल बन जाता है, बाह्य, आंतरिक जगत् दोनों का समन्वय हो करके उसके ऊपर वह नृत्य करता है और नृत्य करता हुआ वह अपनी आभा में रमण करता रहता है।

ब्रह्माण्ड की नाभि याग

तो विचार-विनिमय क्या बेटा! मैं वह वाक्य समाप्त कर गया हूँ जो महर्षि वशिष्ठ ने कहा था इसका सूत्र क्या है? इस ब्रह्माण्ड, बाह्य और आन्तरिक जगत् का सूत्र क्या है? इस सम्बन्ध में बहुत-सी विवेचनाएं नाना ऋषियों ने दी हैं और मैं भी कुछ देता चला जाऊं, परिचय के रूप में जैसा अंगीरस ऋषि ने बहुत परम्परागतों में इसके ऊपर अनुसन्धान किया और अपना वाक्य निर्णीत किया। निर्णय देते हुए कहा, इस सर्वत्र बाह्य और आन्तरिक

जगत् का जा चित्त-मण्डल कहलाता है वह सूत्र है। चित्तों में जो तरंगें रमण कर रही हैं, नाना चित्रों के रूप में उनका जो सूत्र है 'प्राणम् ब्रह्मेः कृतः' वेद का ऋषि कहता है इन सब तरंगों के मूल में, आभा में रमण करने वाला जो प्राण सूत्र है वह सब तरंगों को अपने से पिरो करके गति कर रहा है। जैसे मानव का शब्द है, वह प्राण के ऊपर गति कर रहा है। जैसे यजमान यज्ञशाला में विद्यमान हो करके जितने होताजन होते हैं वह यजमान की वाणी को महान् बनाना चाहते हैं। उद्गान गाता हुआ वह उद्गाता के रूप में पवित्रता चाहता है। होताजन आहुति दे करके जैसे हृदय में सदा आहुतियाँ दी जाती हैं, ऐसे यज्ञशाला में साकल्य की आहुति दे करके बाह्य रूप से यजमान को यह कहा जाता है, हे यजमान! मेरी वाणी को, तेरे हृदय को हम पवित्र बनाना चाहते हैं। तो मुनिवरों! यज्ञोमयी यज्ञ ही हृदय है। संसार का हृदय क्या है? वेद का ऋषि ंकहता है, 'यज्ञो ब्रह्माः कृतम् देवाः यज्ञम् हृदयः' अर्थात् यज्ञ ही इस संसार में हृदय माना गया है। संसार का हृदय है, मुनिवरों! इस ब्रह्माण्ड की नाभि याग कहलाता है।

तो बेटा! मैं विशेष चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। विचार-विनिमय क्या? इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड का एक सूत्र है, जो प्राणोमयी सूत्र कहलाता है। प्राण-सूत्र में यह सब तरंगें ओत-प्रोत रहती हैं। इसी प्रकार प्राण भी दो प्रकार के रूपों में गति करता है। वास्तव में तो नाना रूप हैं परन्तु एक विशेष होता है, एक सामान्य होता है। सामान्य प्राण मानव के शरीर में गति करता रहता है और जो विशेष प्राण गतिशील बना रहा है, ऊर्ध्वा में ध्रुवा में, प्रसारण में, आकुंचन में जो आभा में प्रकट करा रहा है वही क्रिया इस ब्रह्माण्ड की गतियों में गतिशील हो रही है। तो विचार-विनिमय क्या? कि प्रत्येक मानव प्रत्येक देव-कन्या इस संसार में अपने को ऊंचा बनाना चाहते हैं तो बाह्य जगत् और और आन्तरिक जगत् दोनों का समन्वय होता हुआ, दोनों का मिलान होता हुआ मुनिवरो! दोनों को एक-दूसरे का पूरक स्वीकार करना चाहिए, उसको जानना चाहिए। मानव बिना जाने इस संसार में मानवता और महत्ता को नहीं प्राप्त हो सकता।

सूक्ष्मवाद

तो विचार-विनिमय क्या? मेरे पुत्रो! जैसे यह उद्गार आभा में प्रकट हो रहे हैं, वेद का मन्त्र हमें प्रेरणा दे रहा है, इसी प्रकार भारद्वाज और वशिष्ठ मुनि महाराज दोनों की विवेचना हो रही थी। ऋषि ने कहा, हे ऋषिवर! इस बाह्य जगत् में जो विज्ञानमयी धारा गति कर रही है उसको तुम कैसे जानते हो? ऋषि कहता है जो गतियाँ करने वाला सूक्ष्मवाद है उस सूक्ष्मवाद को हम यन्त्रों में प्रवेश कर देते हैं। यन्त्रों में कैसे प्रवेश करते हैं? एक ऐसी आकर्षण शक्ति वाली कृतियों को हम बनाते हैं, धातु के द्वारा आकर्षण शक्ति से, जैसे विद्युत को हम मन्थन करने के पश्चात यन्त्रो में मन्थन करते हैं वह जो द्यौ में रमण करने वाली अग्नि है जैसे सूर्य को प्रकाशित करने वाला द्यौ है। सूर्य को प्रकाशित कर रहा है द्यौ से ही वह शक्ति ले रहा है। वहीं द्यौ सूर्य को प्रकाशित कर रहा है द्यौ से ही वह शक्ति ले रहा है। वही द्यौ सूर्य में और वहीं द्यौ जब पृथ्वी के गर्भ में, सूर्य के प्रकाश के रूप में रमण करती है तो नाना प्रकार का धातु, नाना प्रकार का साकल्य उनके द्वार से उत्पन्न होता रहता है। इसी प्रकार वहीं द्यौ, वहीं सूर्य जब किरणों बन करके मानव के शरीर में प्रवेश करती हैं तो नाना प्रकार की धातुओं की तरंगे मानव शरीर से बाह्य जगत् में आभायित होती-सी दृष्टिपात होने लगती हैं। तो मेरे प्यारे! सूर्य की किरणों को जब हम यन्त्रों में लाते हैं, उनमें जो शक्ति है शक्ति रूप में, यन्त्रों में जब प्रवेश करते हैं तो एक-एक यन्त्र ऐसा हमने निर्माणित किया है जिस यन्त्र में सूर्य की जो शक्ति है, किरण में जो द्यौ भरा हुआ उस द्यौ को हम इसमें ला करके, ओत-प्रोत करा करके एक-एक यन्त्र ऐसा है जिससे लाखों वर्षो की आयु का यन्त्र लोकों की परिक्रमा करता रहता है।

सूर्य मन्थन

मेरे प्यारे! भारद्वाज ने कहा था, हे ऋषिवर! जब मैं विद्यालय में शिक्षा अध्ययन करता था तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव दत्त मुनि महाराज आसन पर विद्यमान थे, कुछ ब्रह्मचारी और भी थे। उन ब्रह्मचारियों में श्रेष्ठ जो ब्रह्मचारी थे, सोमभानु थे, जो अंगिरस गोत्रीय कहलाते थे। एक सोमकेतु ऋषि महाराज थे जो शांडिल्य गोत्रीय कहलाते थे एक समय हम उनके आश्रम में विद्यमान थे, शिक्षा अध्ययन कर रहे थे। तो एक विज्ञानशाला थी उनके विद्यालय में, जिसमें उन्होंने हमसे एक यन्त्र का निर्माण कराया और एक वेद-मन्त्र को उन्होंने उच्चारण किया था, 'सूर्यश्चमाम् ब्रह्मम् सूर्याणि गच्छताम् प्रवेः वृताम् बृहस्पति देवः' उन्होंने कहा कि तुम सूर्य के तथ्य का मन्थन करो। तो उस समय जब मन्थन करने लगे दर्शनों से और उस वेद-मन्त्र की उड़ान उड़ने लगे तो उड़ान उड़ते हुए उन्होंने तथ्यों के ऊपर जब कहा, विचार आया कि सूर्य की जो किरण है, सूर्य की जो नाना प्रकार की कान्ति आती है जो रात्रि को भी अपने गर्भ में धारण कर लेती है अन्धकार को भी अपने में, प्रकाश में रमण करा देती है और नाना मण्डलों को उसकी किरणें अपने में आच्छादित कर लेती हैं, उसकी आभा में हमें जाना है। कुछ किरणों को हमने एकत्रित किया। एकत्रित करने के लिए उन्होंने हमें कुछ धातु और पिपाद दिया, उसमें विद्यमान हो करके सूर्य की ककिरण को हम आकर्षित करने लगे। जब सूर्य की किरण हमने यन्त्रों में भरण कर ली, भरण करने के पश्चात् उससे हमने कृटीक नामक एक यन्त्र का निर्माण किया था। उसको जब वायु मण्डल में हमने किरणों के साथ में गति देना आरम्भ किया, यन्त्र जब बृहस्पति की परिक्रमा करने लगा तो किरणों की कुछ तरंगें ऐसी थीं जो हमारी विज्ञानशाला में किरणों के साथ में आती रहती थीं। वह चित्र-वाहिनी किरण थी जिसमें चित्र आते रहते थे। जैसे पृथ्वी पर हम विद्यमान रहते हैं, हमारी नाना प्रकार की धाराओं को सूर्य की किरण अन्तरिक्ष में ले जाती है, ले जा करके उसके चित्र भी साथ में चले जाते हैं वह चित्र यन्त्र से इस पृथ्वी-मण्डल पर आते हैं। तो उस समय पूज्यवाद गुरुदेव दत्त मुनि ने कहा था, हे ब्रह्मचारियों! तुम कुशल हो। इस कार्य में तुम कुशलता को प्राप्त करोगे। तो हे ऋषिवर! उसी आभा को ले करके हमने अपनी विज्ञानशालाओं में अनुसंधान किया। हमने मानवीय दर्शन बाह्य और आन्तरिक जगत् दोनों के ऊपर अनुसंधान किया है। मानव तभी सफलता को प्राप्त होता है जब बाह्य जगत् को हम जानते हैं, आन्तरिक जगत् को जान करके बाह्य जगत् में प्रवेश करते हैं और प्रवेशिका को हम आन्तरिक जगत् में पुनः पिरो देते हैं तो उससे हमारे में नास्तिकता नहीं आती। आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद दोनों का हम परम्परागतों से समन्वय करते रहे हें। तो मेरे प्यारे! दोनों प्रकार के विज्ञान का समन्वय करना, उस आभा में रमण करना यह मानव का कर्त्तव्य कहलाता है। आभामयी जीवन कहलाता है जिससे हम मानवीयता से आभा में रमण करते रहते हैं।

तो मेरे प्यारे! आज मैं विचार यह देने के लिए आया हूँ कि हम इस चित्त के मण्डल को जानें। शेष चर्चाएं तो मैं कल ही प्रकट करूंगा। आज का विचार तो केवल यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और एक देव जो ब्रह्माण्ड में ओत-प्रोत हो रहा है, जिस सूत्र में यह जगत् पिरोया हुआ, दृष्टिपात आता है उस सूत्र में ही हम रमण करने वाले बनें। वह सूत्र ही हमारा जीवन है। इस आभा को ले करके आचार्यो ने प्रत्येक वेदमन्त्र को ओ३म् रूपी सूत्र में गूंथा है। बेटा! ये चर्चायें मैं कल करूंगा। आज का वाक्य यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए इस संसार को एक-दूसरे में ओत-प्रोत होता हुआ, प्रतिष्ठित होता हुआ दृष्टिपात करते चले जाएं। इसी से हमारा मानव जीवन ऊंचा बनेगा, महत्ता में प्रकट करते रहेंगे। यह है बेटा! आज का वाक्य। आज हम वशिष्ठ मुनि और भारद्वाज मुनि महाराज की चर्चायें कर रहे थे। दोनों का विचार एक-दूसरे में समन्वय रहता था। क्योंकि वह ब्रह्मवेत्ता थे और वह विज्ञानवेत्ता, ब्रह्मवेत्ता दोनों में गति करने वाले थे। जो ब्रह्मवेत्ता होता है वह विज्ञानवेत्ता होता है और यदि यह दोनों आभायें वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में नहीं होती तो वैज्ञानिक नास्तिकता को

प्राप्त हो जाता है। यह है बेटा! आज का वाक्य। समय मिलेगा शेष चर्चायें कल प्रकट करेंगे। अब वेदों का पठन-पाठन होगा। स्थानः आर्य समाज माडल टाऊन, अमृतसर, दिनांक 18 01 1982

१० दसम अध्याय अध्यात्म और भौतिकवाद 05 03 1982

जीते रहो! देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भान्ति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परगतों से ही उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद-वाणी में इस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वह जो मेरा देव है वह सर्वत्र ब्रह्माण्ड में ओत-प्रोत है, वह विज्ञानमयी में रमण करने वाला है, संसार का प्रत्येक वैज्ञानिक उसके विज्ञान को प्राप्त करता रहता है और यह विचारता रहता है कि विज्ञान कहाँ से प्राप्त होता है? तो मेरे प्यारे। जो मेरे देव ने रचा है, वह जो रहस्यमयी रचना है उस रचना के ऊपर मानव चिन्तन करता रहता है चाहे वह विज्ञानवेत्ता हो, चाहे वह आध्यात्मिकवेत्ता हो। परन्तु दोनों प्रकार के विज्ञान एक मानवीयता में निहित रहते हैं। क्योंकि संसार में जितना भी परमाणुवाद है, उस परमाणुवाद के ऊपर परम्परागतों में ही उड़ान होती रही है और मानव सृष्टि के प्रारम्भ से उड़ान उड़ रहा है। परन्तु वह उड़ान उड़ता हुआ प्रभु को विज्ञानमयी स्वीकार करता हुआ अपने को अपनत्व में सीमित हो जाता है। परन्तु वह वैज्ञानिक ऐसा है जो विज्ञान की तरंगों को जानता हुआ अनुभव कर रहा है, कि मैंने ही सर्वत्र विज्ञान की तरंगों को जाना है। वह अभिमान में परिणत हो जाता है परन्तु दिया हुआ जो प्रभु का ज्ञान है, प्रभु ने जो रचना रची है, उस रचना का उसे प्रतीत नहीं है। यह वैज्ञानिक अभिमानित क्यों हो रहा है? अभिमान तो उसे उस वस्तु में करना है जो उसका स्वतः निर्माण किया हुआ है, क्योंकि जितनी वस्तु हैं इस संसार की, वह पंचीकरण में ओत-प्रोत रहती हैं। मेरे प्यारे महानन्द जी ने इससे पूर्व शब्दों में वर्णन कराया कि आधुनिक काल में कर्त्तव्य का पालन नहीं हो रहा है। परन्तु उसके मूल में उन्होंने विज्ञान के दुरुपयोग की चर्चाएं की हैं। जो विज्ञान प्रभु ने रचा है उस रचे हुए विज्ञान को इसे स्थूल रूम में लाने वाला विज्ञान का दुरुपयोग करता रहा है, इसलिए अज्ञानता आती रहती है। अज्ञानता का संसार में यदि कोई मूल है तो वह अपने में और प्रभु के विज्ञान में जो संकीर्णता है उसको व्यापक और स्थूल बनाना, उसका दुरुप्रयोग करना ही अज्ञान कहलाता है और वही मानव को कर्त्तव्य से दूर ले जाता है, मानव, मानव नहीं रहता।

आज का हमारा वेद-मन्त्र क्या कह रहा है। हे मानव! तू आध्यात्मिकवेत्ता या विज्ञानवेत्ता बन, आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता या जिससे अपने को जानने वाला प्राणी प्रभु के द्वार पर चला जाता है और अपने की वही प्राणी जानता है जितना भी यह भौतिकवाद हमें दृष्टिपात आ रहा है, इस भौतिकवाद के आंगन में प्रत्येक मानव विज्ञान में गति कर रहा है। परन्तु यह जो विज्ञान है यह प्रत्येक मानव के मस्तिष्क में विद्यमान है। परन्तु प्रत्येक मानव यदि साधनों से उपार्जित हो जाए तो वह सूर्य की यात्रा भी करने लगता है, चन्द्रमा का यात्री भी बन जाता है, मंगल और बुध में रमण करता है और भी नाना प्रकार के लोकों में गति करने लगता है परन्तु यह कैसे? यह आध्यात्मिक मार्ग वाला जितना व्यक्ति है वह इस मार्ग से हो करके ही गति कर रहा है, यदि भौतिकवाद को जानता हुआ मानव परायणता को प्राप्त नहीं होता तो वह आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता नहीं बन सकता, क्योंकि आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता उसी काल में बनता है जब, वह इस संसार से उपराम हो जाता है और उपराम जब होता है, जबकि इसको जान लेता है। यदि हम मानव शरीर को नहीं जानते, इस मानवीय ब्रह्माण्ड को नहीं जानते तो हम बाह्य-जगत् को भी नहीं जान सकते। परन्तु बाह्य-जगत् में जितना भी क्रिया-कलाप हो रहा है वह मानव के आन्तरिक जगत् में भी हो रहा है। जैसे मुनिवरो! माता के गर्भस्थल में शिशु का निर्माण होता है, नौ माह तक माता के गर्भ में रहता है, वह नौ माह तक क्यों रहता? क्योंकि संसार की जितनी गणना है वह नौ तक कहलाती

है। जितना भी यह संसार है इसमें जितनी भी गणना करने लगो, परन्तु गणना केवल नौ तक कहलाती है तो इसीलिए नौ माह के शरीर का निर्माण होता है और! नौ माह की आभा को लेते हुए इसमें जो भी वायुमण्डल का क्रिया-कलाप है वह माता के गर्भ में हो रहा है। समुद्र में जब प्लावन आता है तो माता के गर्भ में भी जल प्लावन की प्रतिक्रिया हो जाती है, यदि संसार में बड़वानल नाम की अग्नि में प्रवेश करता है जल, तो माता के गर्भस्थल में जो जल है, समुद्र का भाग है उसमें भी वही अग्नि का प्रभाव हो रहा है। तो यही मानव के जीवन की गतियाँ हैं जो समुद्र में गति हो रही है।

भौतिकवाद

मेरे पुत्र महानन्द जी, ने जो कहा था कि संसार में जितनी गतियाँ हैं वह गति केवल विचाराधीन कहलाती हैं। परन्तु आज में विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि मानव के जीवन में जब वह बाह्य जगत् को आन्तरिक जगत् में दृष्टिपात करता है तो वह भौतिकवाद के मार्ग में ऊपर से जाता है। अब यह भौतिकवाद क्या है, आध्यात्मिकवाद क्या है? इसके ऊपर विचार-विनिमय करना है। भौतिकवाद उसे कहते हैं, जितना भी यह संसार का व्यापार है, व्यापार क्या है? एक मानव प्रातःकाल अपने स्थल से पृथक होता है, जब वह पृथक होता है तो अपने कार्यो में रत हो जाता है। जो वैज्ञानिक है वह विज्ञान को विचारता है, जो मानव धर्म के मर्म को जानता है, याज्ञिक पुरुष यज्ञ करने में लग जाता है, जो साधकजन होते हैं वह साधना में रत हो जाते हैं, प्रभु का चिन्तन करते हैं, जो भी जिसका व्यापार है वह सत्यता में रमण करते हैं। परन्तु वह होता किस प्रतिक्रिया से है इस मानव के द्वारा। मुनिवरो! यह मानव शरीर पंचीकरण कहलाता है। इस पंचीकरण में पंचमहाभूत कहलाते हैं, पंच-इन्द्रियाँ कहलाती हैं, उन इन्द्रियों से जो भी व्यापार हो रहा है, उस व्यापार का नाम भौतिकवाद कहलाता है। इन इन्द्रियों को समेट करके, जब मानव एकत्रित हो करके और भी गम्भीर क्षेत्र मे रमण करते हैं, परन्तु सूक्ष्मता से इन्द्रियों का, बुद्धि और मन का जब समन्वय होता है, दोनों का जब समन्वय होता है, बुद्धि मेधा के द्वारा प्रवेश करती रहती है तो यह जो तरंगवाद रमण कर रहा है तरगों में यह ओत-प्रोत है उस तरंगों में जो भी वस्तु गति कर रही है, उन गतियों को जानने लगता है, उन गतियों में रत हो जाता है, आगे चल रहा है परन्तु वह मार्गवेत्ता है, वह मार्गो में रमण करना चाहता है। नाना सूर्यो की किरण आ रही हैं, चन्द्रमा की कान्ति आ रही है, वायु गति में गतिशील हो करके प्राण दे रही है। अग्नि अपने तेज में संसार को तेजस्वी बना रही है। अन्तरिक्ष परमाणुवाद का कोष माना गया है। तो इसमें अपने इन्द्रियों के सूक्ष्म विषयों को ले जाता है। क्योंकि वह अंकुरित शरीर मे विद्यमान है।

बेटा! मैंने बहुत पुरातन काल मे कहा था कि इस ब्रह्माण्ड में जो भी लोक-लोकान्तर निहारिका है उसकी छाया इस मानव शरीर में होती है और उसके ऊपर वह कल्पना करता रहता है। कल्पना तभी आती है जब उसका कोई न कोई अंश उसके साथ होता है, यदि अंकुर नहीं होगा तो कल्पना भी नहीं होगी, यदि अंकुर नहीं होगा तो वह उस विषय के लिए अनुसंधान भी नहीं कर रहा होगा। परन्तु वह जो पंचमहाभूत हैं उन पंचमहाभूतों में सर्वत्र ब्रह्माण्ड का कोष कहलाता है, उसमें सर्वत्र विज्ञान और ज्ञान विद्यमान रहता है। चाहे वह सूर्य की उड़ान करने वाला मानव हो, चाहे वह चन्द्रमा की उड़ान करने वाला हो, चाहे वह निहारिकाओं में गति करने वाला हो, चाहे वह सूर्य किरणों के साथ अन्तरिक्ष में गति करने वाला हो। परन्तु यह सर्वत्र पंचमहाभूतों में माना गया है, जिन महाभूतों में यह द्यौ में जो ओत-प्रोत हो जाते हैं, द्यौ से प्रकाश आता है। वह प्रकाश सूर्य में पहुंचता है, सूर्य जब प्रकाशित हो करके प्रकाश देता है, उन किरणों को वैज्ञानिक अपने में धारण करता है।

बालकृति ऋषि का सूर्य अनुसन्धान

मुझे स्मरण आता रहता है, बेटा! उद्दालक गोत्र में एक ऋषि हुए हैं, उस ऋषि का नाम मुनिवरो! बालकृति था। वह एक समय सूर्य की किरणों का अनुसन्धान कर रहे थे। अनुसन्धान करते हुए वह रसना के अग्रभाग में सूर्य की किरणों को लेते थे। अग्रभाग में जब सूर्य की किरणों को लेते थे, उनमें पंचमहाभौतिक जो स्वादन हो रहा है वह किरणों में विद्यमान था, जिह्वा तपायमान होने लगी। विचार आया मुनिवरो! इस विद्या में शक्ति प्रदान हो जाती है और वाणी में वह जो अग्रणों में छिद्र कहलाते हैं, उन छिद्रों में एक आभा, एक कृति, तेज आ जाता है। सूर्य की किरणें प्रवेश कर जाती हैं और जब सूर्य की किरण छिद्रों में प्रवेश करती हैं तो वहीं वैज्ञानिक पृथ्वी स्थल पर एक यन्त्र का निर्माण करता है। उन धातु-पिपादों को जानता है और यह यन्त्रों का निर्माण करता हुए, उन किरणों को अपने में ग्रहण करता हुआ तेजस्वी बनता है और उन किरणों में एक श्रवण वाहिनी किरण है, एक दाहन वाहिणी किरण है, नाना प्रकार की किरणों को जानने वाला महान् वैज्ञानिक बन जाता है।

मैंने तुम्हें कई काल में प्रकट करते हुए कहा था। बहुत पुरातन काल हुए कि महाराजा हनुमान अपनी विज्ञानशाला में विद्यमान है। एक समय महाराजा कुम्भकरण उनके समीप आए और महाराजा कुम्भकरण ने और अग्रणी महाराजा हनुमान से यह कहा कि मुझे विद्या का भान कराओ। महाराजा हनुमान ने कहा कि तुम तो भारद्वाज मुनि के यहाँ रहते हो, वह वैज्ञानिक हैं, वह महान् हैं, उनके द्वारा तुम इस विद्या का अध्ययन करो। तो मुनिवरो! उन्होंने कहा कि मैंने अध्ययन तो किया है परन्तु यह विद्या इतनी नितान्त है कि वह विद्या जहाँ से कितनी प्राप्त हो जाये वहाँसे ग्रहण कर लेना चाहिये। महाराजा हनुमान ने एक यन्त्र का निर्माण किया था। उस यन्त्र पर जब वह विद्यमान हो करके गति करते थे तो वायु में गति करते रहते। महाराजा हनुमान ने उस विद्या को जाना। जिस सूर्य की किरणों को, किरणों के साथ एक यान सूर्य की आकर्षण शक्ति के द्वारा वह सूर्य मण्डल भी आभा को गति करने लगा। इस विज्ञान को महाराजा कुम्भकरण ने भी जाना। समीपकेतु ने भी उस विज्ञान को जाना।

तो मुनिवरों! वह विज्ञान है विज्ञान को जानने वाला, वहीं मानव आध्यात्मिकवेत्ता बनता है जब तक इस ब्रह्माण्ड को नहीं जाना जायेगा या जितना भी वह मानव शरीर है इस मानव शरीर में जो क्रिया-कलाप हो रहे हैं चाहे वह नेत्रों के द्वारा हो रहे हों, चाहे वह घ्राण के द्वारा हो रहे हैं चाहे वह श्रोत के द्वारा हो रहे हैं, चाहे त्वचा के द्वारा, चाहे रसना के द्वारा परन्तु यह जो क्रिया-क्लाप है, जब तक इसको सुदृष्टि नहीं बनाया जायेगा, तब तक हम भौतिकवाद में सफलता को प्राप्त नहीं हो सकते। मेरे प्यारे! यह वैज्ञानिकजनों का क्या? आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता का कथन है। हम वैज्ञानिक भी है और विज्ञान, यदि उस विज्ञान से युवक समाज या राष्ट्र का समाज दूषित होता है तो वह विज्ञान विज्ञान नहीं कहलाता है।

अंगीरस ऋषि का ब्रह्माण्ड दर्शन

आज मैं तुम्हें एक ऋषि के द्वार पर ले जाऊँगा जो बहुत सूक्ष्म विचारवेत्ता थे। मेरे प्यारे! सतोयुग के काल में एक अंगीरस नामक ऋषि हुए जो ब्रह्मा जी के चरणों में अध्ययन करते थे वह अंगीरस ऋषि महाराज इस ब्रह्माण्ड को जानने लगे, इस मानव शरीर को जानने लगे। मानव शरीर में जो क्रिया-कलाप आता रहा वासना आई, उसको भी शान्त कर दिया। क्रोध आया, उसे भी शांत कर दिया। अग्नि के गुण आये, उन्हें भी शांत कर दिया। जलों में जो परमाणु गति कर रहा था उनमें सान्त्वना, उसमें विद्युत को भी जाना, उसमें भी वह सफलता को प्राप्त हुए। अग्नि जो गति कर रही है, अग्नि के परमाणु जो गतियाँ कर रहे हें, अरबों-खरबों जिनकी गणना नहीं की जा सकती उसे भी गणना करते-करते मौन हो गये, मौन हो जाने पश्चात् सर्वत्र इन्द्रियों के विषयों को कैसे जाना? नेत्रों को जाना, केवल रूप तक नेत्रों का समन्वय रहता है और नेत्रों को जान करके जानते-जानते नेत्रों को

रूप में व्यापक कर दिया। रूप कहाँ तक जाता है? हम एक माता को दृष्टिपात कर रहे हैं। माता को निहारते रहते हैं। निहारते-निहारते उसके सूक्ष्म रूप में प्रवेश करते हैं। यह माता का रूप है यह माता का आकार है। माता का शरीरांग इस प्रकार है परन्तु शरीरांग के ऊपर वह और उसके गर्भ में जाता है, गर्भ में कैसे जाता है? देखों जैसे नेत्र हैं माता के वह नेत्रों का स्रोत कहाँ है? वह हृदय में है। माता का जितना अंग है उसका सम्बन्ध हृदय से होता है और वह जो हृदय है, उस हृदय का सम्बन्ध कहाँ रहता है? यह जो जितना जगत् है, यह जो गतियाँ हैं, यह परमात्मा का हृदय कहलाता है। इस हृदय का समन्वय परमात्मा के हृदय में रहता है। अब और गम्भीरता में आता हूँ, ऋषि गम्भीरता में गति करता है। क्या परमात्मा का हृदय है? यह परमात्मा क्या वस्तु है? तो विचारता है कि वह गति है। गति के गर्भ में हृदय है और वह गति ही कहलाता है। तो इस गति में जाने के पश्चात् वह गति में गति करने लगता है। गति में जब गति होने लगती है तो इस मन की आभा को त्याग देता है। क्योंकि मन के गर्भ में माता था, मन के गर्भ में उसका रूप था, मन के गर्भ में उसका हृदय था। मन के गर्भ को त्याग करके चेतना पर आ गया, प्रकृति का व्यापार समाप्त हो गया। जब ऋषि का प्रकृति का व्यापार समाप्त हो गया तो मुनिवरो! वह कहाँ चला गया? वह जो आत्मा हृदय में गति कर रहा था, वह जो आत्मा था, वह हृदय को हृदय बना रही थी, जो अन्तरिक्ष को अन्तरिक्ष बना रही थी जो परमात्मा के हृदय प्रकृति का सूक्ष्म रूप बन रहा था। वह सर्वत्र अपने में जान करके केवल उस समय आत्मा जब रह जाती है तो प्रभु के राष्ट्र में वह व्यापार करने लगते हैं और जब उसका व्यापार होने लगता है तो उसको हमारे यहाँ ऋषिजन मुक्ति का मार्ग कहते हैं।

मैं कहाँ चला गया हूँ? वाक् यह उच्चारण कर रहा था कि जितना भी विज्ञान है, इस व्यापार को, इस सर्वत्र विज्ञान को जानता है योगीजन, विज्ञान को बिना जाने आध्यात्मिकवेत्ता नहीं बन सकता। मेरे प्यारे! इस भौतिकवाद को त्यागा भी नहीं जाता क्योंकि भौतिकवाद त्यागने की वस्तु नहीं है, वह भौतिकवाद तो जानने की वस्तु है। उसकी जब तक जानकारी नहीं हो सकती, जब तक गुरु-शिष्य की परम्परा नहीं बनती। क्योंकि गुरु के चरणों में शिष्य पहुंचता है और शिष्य कहता है कि प्रभु! मैं मोक्ष चाहता हूँ, मैं आनन्द चाहता हूँ, मैं सूर्य जैसा प्रकाश चाहता हूँ। तो गुरु उत्तर देता रहता है, हे पुत्र! संसार में जब तक शरीर के स्तम्भों को स्थूल रूप में, सूक्ष्म रूप में, पंचीकरण में नहीं पहुंचोगे और पंचीकरण को जड़वस्तु त्याग करके, जड़वस्तु बना करके त्यागना और त्यागने के पश्चात् उस पंचमहाभूतों का जो गृह है, जिस गृह में आत्मा वास करता है उस गृहों को त्यागना है और त्यागने से केवल आत्मा के स्वरूप में पहुंचना है जब तक आत्मा के स्वरूप को तुम नहीं जानागे, आत्मा के स्वरूप को जब तक नहीं जाना जाएगा तक तक इस भौतिकवाद को नहीं जानोगे, क्योंकि जहाँ हृदय का निर्माण है, दूसरी वस्तु को जाने बिना इस स्थूल और व्यापकता को नहीं जानोगे। जैसे एक मानव हृदय में काम-वासना का जन्म होता है, तो काम-वासना के जन्म को जानना होगा। काम-वासना के जन्म को कैसे जानोगे? नेत्रों ने रूप को दृष्टिपात किया, नेत्रों के स्वरूप को दृष्टिपात नहीं किया। इससे और ऊंचे ऊर्ध्वा में जाओ। जैसे अन्न का दूषित होना है। हमने पान अन्न को किया और अन्न को पान करके उसमें कुछ तरंगें आ गई अन्न में, दैत्य और देवताओं दोनों की प्रवृत्तियां रहती हैं, यदि अन्न में विचार भव्य है, महान् है, माता का विचार पवित्र है, अन्न को देने वाला, अन्न को पवित्र बनाने वाला मुनिवरो! कौन? माता है, जो उस अन्न को दे रही है उस अन्न से मानव का, ब्रह्मचारी का, मन का निर्माण हो रहा है और मन का जब निर्माण हो रहा है, मन का व्यापार भी बन रहा है। जब मन का व्यापार बन रहा है तो मन जैसा गुण अन्न में होगा, उसी प्रकार के मन का निर्माण हो जाएगा। जब मन का इस प्रकार निर्माण होता है, निर्माण होने के पश्चात् मन विशुद्ध बन जाता है, उस समय यदि वासना का जन्म होता है, वासना का जन्म अन्न के दूषित होने से होता है परन्तु उस अन्न को जानना है। हमें उस अन्न को ग्रहण करना है जिससे

मन दूषित न हो जाए। परन्तु मन को जानना है, यह जो मन है, यह प्रकृति का सूक्ष्मतम तन्तु माना गया है। इस प्रकृति के आंगन में इस आंगन को त्याग दो, इसे त्यागने के पश्चात् वासना त्यागी जाएगी, वासना को जब तक हम जानेंगे नहीं, इन्द्रिय जो दैत्य-देवताओं की जो स्वार्थवादी प्रवृत्ति है और देखो निःस्वार्थ प्रवृत्ति है, जब तक स्वार्थ को निःस्वार्थ में परिवर्तित नहीं करोगे, तब तक इन्द्रियों का शोधन नहीं होता, तब तक यह मन पवित्र नहीं होता और जब तक मन पवित्र नहीं है तो मेधा में नहीं जा सकता और यदि मेधा को भी पवित्र नहीं बनाया, मेधा ऊंची नहीं होगी तो ऋतम्भरा में नहीं जा सकते और ऋतम्भरा भी जब तक पवित्र नहीं होगी तो हम प्रज्ञावी में जा करके प्रभु से मिलन नहीं कर सकते हैं।

आत्मा का लोक

मेरे प्यारे! आज मैं कहाँ चला गया हूँ, मैंने कुछ सूक्ष्म रहस्यों को तुम्हें उद्धृत किया है। विचारना क्या है कि गुरुदेव के चरणों में कौन शिष्य विद्यमान है। अरे भोले शिष्य! भोले गुरु! जब तक तू इस संसार की प्रतिक्रिया को नहीं जानता, जब तक तू महानता की गति में रमण नहीं करेगा, तू शिष्य को कैसे ऊंचा बना सकता है। परन्तु शिष्य को जब तक जिस गृह में वह रहता है, उसे आत्मा का, शरीर का ज्ञान नहीं होता तो वह प्रभु के क्षेत्र में कैसे पहुंचेगा? मेरे प्यारे! सबसे प्रथम यह अंगीरस ऋषि महाराज ने सतोयुग के काल में बहुत अनुसन्धान किया। वह एक समय ब्रह्माजी के चरणों में विद्यमान हो करके बोले कि हे पूज्यवाद! तुम और हम, दोनों प्रभु की गोद में विद्यमान हैं। परन्तु इस पंचीकरण वाले जगत् को हमें जानना चाहिए। जब तक पंचीकरण वाले इस आत्मा का जो लोक है, आत्मा का लोक क्या है? पंचमहाभूत। यह पंचमहाभूतों में यह जड़ प्रकृति व्याप रही है। इन्हीं पंचमहाभूतों को प्रकृति कहते हैं और जब चेतना का सन्निधान होता है। तो प्रकृति के पाँच स्वरूप स्वाभाविक जागरूक हो जाते हैं और उस सन्निधानमात्र से ही गतियाँ करने लगते हैं और वह आत्मा का गृह बन जाता है, उस आत्मा के गृह को जानना है।

तो मुनिवरो! विचार-विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा देने नहीं आया। मृत्यु से प्रत्येक मानव मृत्युंजय बनना चाहता है और यह उसकी इच्छा होती रहती है कि मैं मृत्युंजय बनूं। परन्तु मृत्युंजय कैसे बनोगे? मृत्यंजय उसी काल में बनोगे जबकि तुम्हें मृत्यु का भय नहीं रहेगा और मृत्य क्या? इसके ऊपर बहुत से उदाहरण, बहुत-सी चर्चाएं बहुत से वाक् प्रकट किए हैं, अज्ञान का नाम मृत्यु है और ज्ञान नाम जीवन कहलाया जाता है। ज्ञान ही जीवन है और अज्ञान ही मृत्यु है।

ब्रह्माण्ड की अनन्तता

तो मुनिवरो! अज्ञान क्या है? क्या इस मानव शरीर का हम भौतिक जगत् से इसका समन्वय करते हुए और उसका त्याग करके हम प्रकाश में प्रभु के राष्ट्र में प्रवेश करते हैं कि इस संसार में सबसे प्रथम तो यह निश्चय होना चाहिए कि प्रभु है या नहीं। प्रभु है तो क्या है? उस स्वरूप में वह गति करता रहता है, तो मेरे प्यारे! इस आभा में रमण होता रहता है। जब वह रमण करता रहता है तो मानवीय अपनी आभा में गति करता रहता है। हे मानव! यदि तू आध्यात्मिकवाद में जाना चाहता है तो भौतिकवाद के मार्ग से होकर के तुझे जाना होगा, और भौतिकवाद क्या है? भौतिकवाद का मैंने तुम्हें वर्णन कराया कि पंचमहाभूतों में यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड गति कर रहा है। यह नाना निहारिका उस पंचमहाभूतों में गति कर रही हैं। एक लोक नहीं, एक आकाश-गंगा नहीं, दो नहीं, ऋषि कहता है, वह असंख्य कहलाती हैं, उन असंख्यता में जाना नहीं है। ऋषिजन ही अनुभव करते-करते मौन हो गए।

मुझे स्मरण है एक समय बेटा! ब्रह्मा के चरणों में गुरु-शिष्य दोनों निहारिका के ऊपर चिन्तन लगे। चिन्तन करते रहे। सूक्ष्म जगत् में चले गए। इस सूक्ष्म प्रकृति में जब चले गये तो एक निहारिका जानी, दूसरी निहारिका

जानी, तीसरी जानी, परन्तु देखो पचास निहारिका के लोकों की गणना करने लगे। देखो एक निहारिका में लगभग तीन अरब ऋषि मण्डलों की गणना कर ली तो ऋषि अन्त में मौन हो गए। एक निहारिका में मुनिवरो एक सौर मण्डल, और एक सौर मण्डल में ऋषियों ने जो निर्णय किया, कि उस एक सौर मण्डल में लगभग तीन खरब, पचासी अरब नौ सौ बावन सूर्य होते हैं। यहाँ साथ ही देखो एक खरब के लगभग ध्रुव होते हैं और दो खरबों के लगभग बृहस्पति होते हैं तो इसमें निहारिकाओं के बावन मण्डलों का एक सौरमण्डल कहलाता है और एक-एक मण्डल के साथ में मैंने जैसा तुम्हें पुरातन काल में कहा कि एक सूर्य में, एक सूर्य के अन्तर्गत लगभग तीस लाख पृथ्वियां गति करती हैं और एक सहस्र सूर्य हैं जो आरूणि मण्डल की परिक्रमा करते हैं। एक सहस्र आरुणि वृहस्पति की परिक्रमा कर रहे हैं परन्तु वह जो बुहस्पति है वह एक सहस्र बन करके वह ध्रुव की परिक्रमा कर रहे हैं और वह जो ध्रुव मण्डल है, वह धुरव स्वाति नक्षत्रों की परिक्रमा कर रहा है। तो बावन लोकों के साथ में एक-एक सहस्र मण्डलों की गणना बन करके एक सौर-मण्डल बनता है। और ऋषि कहता है कि अंगीरस ऋषि ब्रह्माजी के चरणों में विद्यमान हो करके कहता है कि एक आकाश गंगा के, सूर्यो की गणना करने लगे तो ब्रह्मा और अंगीरस ऋषि कहते हैं कि लगभग देखो एक अरब सौर मण्डल की इस प्रकार से हमने गणना की है। अन्त में ऋषि मौन हो गए। क्योंकि यह अनन्त ब्रह्माण्ड है और अनन्त यह सन्निधानमात्र से प्रकृति का मण्डल बन गया है तो अन्त में कहते हैं इसको त्याग देने से, व्यापक हृदय बनाने से अपने हृदय को परमात्मा के हृदय से समन्वय करते रहो, जब तक हम जान करके और इसको हम अपने हृदय में समेट नहीं लेते और इस हृदय का मिलान हम प्रभु की चेतना से नहीं कर देते, तब तक मानव को मुक्ति प्राप्त नहीं होती।

अज्ञान का नाम मृत्यु

मेरे प्यारे! आज मैं कहाँ चला गया हूँ? मैं ऋषियों के क्षेत्र में चला गया जहाँ ऋषि-मुनि उड़ान उड़ते रहते हैं। आज का विचार यह क्या कह रहा है? अनन्त ब्रह्माण्ड हैं अनन्त मण्डलवाद हैं। परन्तु विचार-विनिमय क्या? बेटा! इसको विज्ञान कहते हैं, इन लोकों को जानना, इस लोकों में जो क्रिया-कलाप हो रहा है उसको दिव्यदृष्टि से, सूक्ष्म दृष्टि से उसको जान करके अपने में समेट लेना है और इस भौतिक विज्ञान को समेट करके, जब यह सिमटा जाता है, यह प्रभु के गर्भ में प्रवेश कर जाता है और अन्तर्रात्मा भी उसमें आनन्दित हो जाती है। तो विचार-विनिमय क्या? मेरे प्यारे! आज मैं अंगीरस ऋषि के आश्रम में चला गया और वह आश्रम कैसा? जहाँ ऊंची-ऊंची ऊर्ध्वा में गति होती रहती है। तो विचारना यह है कि हम अपने जीवन को इतना महान् बनाएं जिससे मानवीयत्व हमारे हृदयों में प्रवेश होता हुआ आध्यात्मिकता में रहता है। आज हम इस संसार के ऊपर नाना कल्पना करते रहते हैं नाना कल्पना नहीं करनी चाहिए। परन्तु इस संसार का स्वभाव है, निर्माण होना और विच्छेद होना। मानव शरीर का निर्माण हुआ है तो विच्छेद अवश्य होना है, उसे मृत्यु नहीं कहते। मृत्यु कहते हैं अज्ञान को, जब हम जानते नहीं है तो नाना प्रकार के विषय-वासनाओं में संलग्न रहते हैं। जिस कार्य के करने के पश्चात् मानव को निराशा का क्षेत्र आ जाता है, उसका नाम अज्ञान कहलाता है। मेरे पुत्रों! यह तुमने जान लिया होगा कि हमें वह कर्म करना है, उस ज्ञान को जानना है, उस विज्ञान को जानना है, जिसे करने के पश्चात् हमें अज्ञानता व्याप न जाए। तो विचारना क्या है? मेरे पुत्रो! हमें बहुत कुछ करना है, बहुत कुछ जानना है और इस मानव शरीर को लेकर के प्रभु से हमें मिलन करना है। यह है बेटा! आज का वाक्। आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय तो तुमने जान लिया होगा कि मानव को इस शरीर को, ब्रह्माण्ड से इसकी कल्पना करो और जानते हुए प्रकृतिवाद को त्यागते चले जाओ और जान करके त्यागो परन्तु देखो यह बिना जाने त्यागी नहीं जाती। जान करके त्यागो और त्यागने से अग्रणीय बनते रहो। जैसे अग्नि मार्ग का प्रदर्शक कहलाती है, अग्नि प्रकाश का दूत कहलाता है। वह

अग्नि गऊ से आती है और वह भी प्रभु का तेज कहलाता है, प्रभु के तेज से ही अग्नि की आभा उत्पन्न हुई। मेरे प्यारे! क्यों हुई है? क्योंकि वह परमाणुओं को ले करके वायु को देती है और वायु उन परमाणुओं को अन्तरिक्ष में ले जाती है। अन्तरिक्ष में उन परमाणुओं की गति हो रही है। यह प्रकृतिवाद का क्षेत्र कहलाता है। परन्तु उन परमाणुओं से लोक-लोकान्तरों का निर्माण होता है, लोकों की आभा में गति होती रहती है। जैसे मानव के एक श्वास से एक रिमणी नाम का एक परमाणु होता है उस रिमणी नाम के परमाणु के साथ एक साथ अरब परमाणु गति करते हैं परन्तु उसके वह जो अरबों वाला परमाणु है उसके साथ में दस खरब परमाणु गति करते हैं तो जैसे यह मानव का पिण्ड है, ऐसे एक शब्द में जो परमाणुओं की गति होती रहती है और वह उस आकार में होती है, जितना उस मानव का शरीर होता है और वह चित्र बन करके अन्तरिक्ष में गति करता है।

मेरे प्यारे! मैं कहाँ तक वर्णन करूंगा, यह विशाल वन है। मैं वन में नहीं जाना चाहता हूँ वन में जाने के पश्चात् मानव मौन हो जाता है। तो आज मेरे प्यारे! हमारा वाक् यह क्या कहता है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा को जानते हुए, ज्ञान और विज्ञान में रमण करते हुए आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करें। वह हमारा प्रकाश है, वहाँ न मृत्यु होती है, न अज्ञान होता है, न आलस्य होता है, न प्रमाद होता है। तो मेरे प्यारे! यह आज का हमारा विचार अब समाप्त हो गया है। मेरे प्यारे महानन्द जी समय को चाहते थे परन्तु उनको कल समय प्रदान किया जायेगा।

आज का हमारा यह वाक्य समाप्त। सब वेदों का पठन-पाठन होगा, शेष चर्चाएं हम कल प्रकट करेंगे। दिनांक : 04 03 1982, स्थान : बरनावा